प्रथम अध्याय

I.i प्रमुख ग्रन्थों का परिचय –

भूमिका – धातुविज्ञान सम्बन्धी अनेक ग्रन्थों में से प्रमुख ग्रन्थों का परिचय इस प्रकार से वर्णित है :–

रसहृदयतन्त्र – यह ग्रन्थ श्री भगवद्गोविन्दपादाचार्य के द्वारा लिखा गया है। भगवद्गोविन्दपादाचार्य आद्य जगद्गुरु शङ्कराचार्य के गुरु थे। इस ग्रन्थ का काल 10वीं शताब्दी का है।[1] इस ग्रन्थ के अन्त में ग्रन्थकर्त्ता ने अपना परिचय देते हुए चन्द्रवंश के हैहय कुल के किरात नृपति श्री मदन का उल्लेख किया है। मदन स्वयं रसविद्या के अच्छे ज्ञाता था, उससे इनको बहुत सम्मान मिला था।[2] इस प्रकार उस किरातनृपति मदनरथ से बहुमान पुरस्कार प्राप्तकर पूज्यपाद भिक्षु श्री गोविन्दपादाचार्य जी ने ''रहहृदयतन्त्र'' नामक ग्रन्थ की रचना की।[3] यथा –

शीतांशुवंशसम्भवहैहयकुलजन्मजनित महिमा।
स जयति श्रीमदनश्च किरातनायो रसाचार्यः।।
यस्यस्वयमवतीर्णा रसविद्या सकलमङ्गलाधारा।
परमश्रेयसहेतुः श्रेयः परमेष्ठिनः पूर्वम्।।
तस्मात्किरातनृपतेर्बहुमानमवाप्य रसकर्मनिरतः।
रसहृदयाख्यं तन्त्रं विरचितवान् भिक्षुगोविन्द।। 19/78/80

सम्पूर्ण ग्रन्थ में 19 अवबोध (अध्याय) हैं, जिनमें क्रमशः (1) रसप्रशंसा, (2) रसशोधन, (3) निर्मुखवासनामुखान्तर्भूतसमुखपत्राभ्रकचारण, (4) सत्त्वाभ्रक, (5) गर्भद्रुति, (6) बीजादिजारण, (7) विड़, (8) रसरञ्जन, (9) बीजविधान, (10)

1. आयुर्वे० र० शा०, पृ० 27
2. र० शा० 4, पृ० 101
3. आयुर्वे० र० शा०, पृ० 27

शुद्धरससत्त्वपातन, (11) बीजनिर्वाहण, (12) द्वन्द्वाधिकार, (13) संकर बीजविधान, (14) बीजयोजन, (15) बाह्यद्रुति, (16) सारण, (17) क्रामण, (18) वेधविधान और (19) भक्षणविधान आदि का उल्लेख है।[1] यह ग्रन्थ अपने में पूर्ण है।

रसेन्द्रचूड़ामणि – इस ग्रन्थ के कर्त्ता सोमदेव हैं यह ग्रन्थ 12वीं शताब्दी में लिखा गया था। इसी ग्रन्थ को आधार मानकर रसशास्त्र के अनेक ग्रन्थ संग्रहीत कर लिखे गये। इस ग्रन्थ में रसोपरस, साधारण रस, रत्नोपरत्न, धातुओं आदि सभी द्रव्यों का विस्तृत विवेचन हुआ है।[2] सोमदेव ने स्वयं कहा है कि अनेक रसतन्त्रों को देखकर अब यन्त्र के विषय में कहूँगा।[3]

आचार्य यादव जी के द्वारा 1925 ई० में इसे मूल रूप में प्रकाशित किया गया था। इस ग्रन्थ का नवीन प्रकाशन आज उपलब्ध होता है।[4]

गोरक्षसंहिता – श्री आचार्य 'गोरखनाथ' द्वारा रचित यह ग्रन्थ 12वीं शताब्दी के अन्त में लिखा गया था। आचार्य गोरखनाथ ने रसशास्त्र पर बहुत कार्य किया था। इनकी गणना 85 सिद्धों में की जाती है। इन्होंने अपने नाम से गोरक्षसंहिता नाम की पुस्तक लिखी थी, जो 1 लाख श्लोकों में पूर्ण थी, जिसका वर्णन नवम्पटल के अन्त की पुष्पिका में लिखा गया है –

"इत्याद्ये स्वच्छन्दशक्यावतारे शतसाहस्त्रयां गोरक्षसंहितायां भूतिप्रकरणे शिवसूत्रं, रसायनविधिर्नाम नवमः पटलः समाप्तः।"

यह ग्रन्थ दो भागों में पूर्ण है – (1) कादिप्रकरण, (2) भूतिप्रकरण। कादिप्रकरण में मन्त्र–तन्त्र–यन्त्र से सम्बन्धित बृहत् भाग है। भूतिप्रकरण रस–रसायन से सम्बन्धित नौ पटलों में पूर्ण है।[5]

---

1. प्रा० भा० में रसा० क० वि० 3, पृ० 324
2. आयुर्वे० र० शा०, पृ० 29
3. र० शा० 4/105
4. आयुर्वे० र० शा०, पृ० 29
5. वही, पृ० 28

रसेन्द्रचिन्तामणि –

''रसो वै सः श्रुतिः प्राह यस्मात्सूतं जगत्त्रयम्।

ध्यायन्ति योगिनो नित्यं तं नमामि रसेश्वरम्।।''

अत्यन्त प्रमाण रूपी भगवती श्रुतिः परमात्मा के स्वरूप का ज्ञान कराती है। यहाँ पर पारद को भी 'रस इति रसेन्द्र' सादृश्य होने के कारण कहा जाता है। जिस प्रकार से ईश्वर तीनों लोकों को उत्पन्न करते हैं, उनका पालन करते हैं। उसी प्रकार पारद रसात्मक ब्रह्मसदृश से संसार के प्रमुख प्राणी मनुष्य को जरा–व्याधि प्रशमन के द्वारा और शरीर शक्तिवर्धन द्वारा 'रस इति रसेन्द्र इति' रूप अनुप्रीणित करता है।[1] रसेन्द्रचिन्तामणि ग्रन्थ कालनाथ के शिष्य ढुन्ढुकनाथ के द्वारा रचा गया है। इस ग्रन्थ में पारे के ऐसे अनेक योग हैं जिन्हें ग्रन्थकार ने अपने अनुभव से लिखा है इसके साथ ही इस ग्रन्थ में नागार्जुन, गोविन्द, नित्यनाथ आदि आचार्यों के मतों का भी विशेष रूप से उल्लेख किया गया है।[2] रसेन्द्रचिन्तामणि को आचार्य श्री ढुण्डुकनाथ ने 9 अध्यायों में अपनी सशक्त एवं प्रखर रचना शैली द्वारा क्रियात्मक रूप से अनुभूत सभी योगों का निर्माण एवं प्रयोग के उपरान्त सफल प्रयोगों को ही इस ग्रन्थ में समाहित किया है। आचार्य श्री ढुण्ढुकनाथ ने इस ग्रन्थ में उन्हीं गुण–दोषों का विस्तृत वर्णन किया है जिन गुण–दोषों को उन्होंने अपने विद्वान गुरुजनों से अध्ययन किया है और साथ ही उन्हीं प्रामाणिक रसौषधियों को इस ''रसेन्द्रचिन्तामणि'' ग्रन्थ में समादृत किया हैं। इस ग्रन्थ के समस्त योग प्रामाणिक है।[3] रसेन्द्रचिन्तामणि में पारद की प्रशंसा और पारद के साथ–साथ अन्य धातुओं की भस्मों के सेवन की प्रशंसा और पारद के साथ–साथ अन्य

1. रसे० चि० म०, पृ० 21
2. (क) आयुर्वे० क० इ०, पृ० 51
   (ख) र० शा०, पृ० 110
3. रसे० चि० म०, पृ० 29

धातुओं की भस्मों के सेवन की प्रशंसा दी है। सोने की भस्म सेवन करने वाले को रुद्रत्व, चाँदी की भस्म विष्णुत्व, भास्करलोह की भस्म ब्रह्मत्व, तीक्ष्ण लोह की भस्म कुबेरत्व, तालक की भस्म सूर्यत्व, राजर लोह की भस्म चन्द्रत्व रोहिणलोह की भस्म अजरत्व और साधारण लोह की भस्म शत्रुत्व देती है।[1]

रसतरङ्गिणी – रसतरङ्गिणी ग्रन्थ कविराज सदानन्द शास्त्री जी द्वारा रचित एक सफल एवं महान ग्रन्थ है इस ग्रन्थ में कविराज ने रसचिकित्सा पद्धति का वर्णन किया है। अर्थात् रसशास्त्र में आयुर्वेद में रसशास्त्र की कितनी महत्ता है यह बात आजकल के प्रतिदिन के व्यवहार में आनेवाली रसचिकित्सा पद्धति के अनुसरण करने वाले किसी से भी छिपी नहीं है। यही नहीं वास्तव में रसशास्त्र में धातुविद्या का भी विशद वर्णन पाया जाता हैं, जिसके लिए अभी वैद्यसमुदाय को बहुत कुछ करने को बाकी है। परन्तु चिकित्सा के लिए रसशास्त्र का अध्ययन–अध्यापन तथा क्रियात्म्क प्रयोग करने पर कई बार यह कठिनाई उपस्थित हो जाती हैं। रसचिकित्सा में व्यवहार में आने वाले खनिज–द्रव्यों का शोधन मारण आदि किस शास्त्र के अनुसार विधि से करने पर उत्तम गुणदायक हो सकता हैं और किससे नहीं। इसके साथ ही यह भी देखना होता है कि अमुक विधि का अनुसरण करने से उसमें अधिक व्यय तथा समय का तो उपयोग नहीं होता जिससे कि हम उसके उपयोग अथवा लाभ से वंचित रह जाये। इन सब बातों का चिरकाल से विचार करते हुए ही रस चिकित्सा में काम आने वाले प्रसिद्ध खनिज द्रव्यों के विज्ञान के विकास के लिए ही कविराज सदानन्द शास्त्री जी ने इस महान ग्रन्थ रसतरङ्गिणी का विवेचन किया हैं। इस ग्रन्थ में खनिजों की प्रकृति, प्राप्ति और गुण दोष आदि का वर्णन आयुर्वेद दृष्टि से उत्तम और सरल प्रकार से किया गया हैं जिससे कि इसमें उनका शोधन–मारण सही रूप में ही हो सके और उसके उपयोग

1. प्रा० भा० में रस० क० वि०, अ०–21, पृ० 567

का भी ज्ञान अच्छी तरह से हो जायें।[1] बीसवीं शती में बनी रसतरंङ्गिणी में रजत, स्वर्ण लवण, मुग्ध रस आदि नये योग ऐलोपैथिक चिकित्सा से लिये गये हैं।

रसेन्द्रसार संग्रह – रसेन्द्रसार संग्रह ग्रन्थ के रचयिता गोपाल भट्ट जी हैं। यह ग्रन्थ भावप्रकाश से पूर्व तथा रसप्रकाश सुधाकर के पश्चात् बना हुआ प्रतीत होता है और इस ग्रन्थ का समय तेरहवीं शती के आस–पास का माना जाता हैं। इस ग्रन्थ में धातुओं के शोधन के प्रकार सरल, सुबोध रीति से तथा थोड़े में ही वर्णित किये गए हैं। इस ग्रन्थ में चिकित्सा का वर्णन गोपाल भट्ट ने विशेष रूप से किया है। रस चिकित्सा का यह ग्रन्थ रसेन्द्रसार संग्रह एकत्र संग्राहक तथा व्यावहारिक दृष्टि से उपादेय है और इसी कारण इस ग्रन्थ का प्रचलन बंगाल में विशेष रूप से हुआ है। इस ग्रन्थ के ऊपर अनेक टीकायें बंगाल के कविराजों ने लिखी है जिनमें से एक टीकाकार रामसेन कवीन्द्रमणि मीर जाफर के दरबार का वैद्य था। इस ग्रन्थ की रचना तथा रसेन्द्र चिन्तामणि का निर्माण एक ही युग की घटना है।[2] रसेन्द्रसार संग्रह का रस सदा ही प्रत्यक्ष फलप्रद ही होता है यह ग्रन्थ बहुत ही सरल और संक्षेप है इस ग्रन्थ में शोधन, मारण तथा रसादिकों की निर्माणविधि भी बहुत सरल बतायी गई है। शोधन मारण में दो–दो और तीन–तीन तथा कहीं इससे भी अधिक विधियाँ बता कर यह सुविधा कर दी है, कि वैद्य को अपने स्थान और समय तथा परिस्थिति के अनुसार जो सरल हो उसी विधि से बना ले। यह रस ग्रन्थ केवल चिकित्सोपयोगी हैं तथा इसमें रसवाद के जटिल विषयों का सम्पूर्ण वर्णन किया गया है। अतः इस ग्रन्थ को पढ़कर एक अल्पज्ञ वैद्य भी कम समय में सीख कर सफल हो सकता है। इन्हीं गुणों के कारण ही इस ग्रन्थ

1. (क) रसतरं० पृ० 12
   (ख) र० शा०, पृ० 115
2. आयुर्वे० क० इ०, पृ० 49

का प्रचार समग्र भारतवर्ष के वैद्य समाज में हैं और अधिकांश चिकित्सक इसके रसों से ही चिकित्सा करते हैं।[1]

रसायनसार – रसायनसार ग्रन्थ की रचना काशी के सुप्रसिद्ध रसायन शास्त्री स्वर्गीय पण्डित श्री श्यामसुन्दराचार्य जी ने की है इस ग्रन्थ की भाषा टीका भी स्वयं रसायन शास्त्री जी ने स्वयं की है शास्त्री जी ने चिकित्साशास्त्र में भी बहुत अधिक सिद्धि प्राप्त कर ली थी। जिसके कारण अखिल भारतवर्ष के प्रमुख पण्डितों ने इनकी योग्यता पर मुग्ध होकर कई मानपत्र और उपाधियाँ शास्त्री जी को समर्पित की थी। यह सब उपाधियाँ शास्त्री जी को केवल उनकी श्रेष्ठता और पाण्डित्य के कारण ही नहीं अपितु उन्होंने आयुर्वेदीय रसशास्त्र में विशेष प्रेम होने के कारण रसौषधियों के निर्माण में जो महत्त्वपूर्ण कार्य किया है उनको संसार के समाने रख दिया है उन्हीं सब कारणों से शास्त्री जी को और उनके इस ग्रन्थ को इतनी मान्यता दी गई है। शास्त्री जी ने इस ग्रन्थ में चन्द्रोदय, मकरध्वज, स्वर्णसिन्दूर, रसकर्पूर, सिन्दूररस और सर्वधातु–उपधातु–शोधन–मारण और चिकित्साकाण्ड आदि का वर्णन किया है।[2]

रसपद्धति – रसपद्धति नापमक लघु रसग्रन्थ आचार्य श्री बिन्दु द्वारा लिखा गया है यह लघु रसपद्धति नामक रसग्रन्थ रसशास्त्र के सिद्धान्तों को प्रतिपादित करता हुआ रसौषधियों द्वारा सम्पूर्ण रोगों की चिकित्सा बताता है। यह ग्रन्थ पन्द्रहवीं शताब्दी में लिखा गया था इस ग्रन्थ में मात्र 231 श्लोक हैं। आचार्य ने इस ग्रन्थ में मुख्यतः ''शार्दूलविक्रीडित'' छन्द का प्रयोग किया हैं। इसके अतिरिक्त एक दो स्थलों पर शिखरिणी और अनुष्टुपादि छन्दों का भी उपयोग किया गया हैं। इस ग्रन्थ में अड़तालीस रसयोगों का सम्यक

---

1. रसे० सा० सं०, पृ० 7
2. रसा० सा०, पृ० 2

संकलन भी किया गया हैं। इस ग्रन्थ में पारद के संस्कार–शोधन–जारण–सारण क्रामण, मूर्च्छना के विभिन्न प्रकार तथा महारस, उपरस–रत्नोपरत्न तथा सभी धातुओं का वर्णन शोधन–मारण का विधान बताया गया है। इस ग्रन्थ की संस्कृत व्याख्या विद्वान् वैद्यवर आचार्य महादेव के द्वारा की गई थी। इस ग्रन्थ की भाषा शैली बड़ी दुरुह है। इस ग्रन्थ में स्वर्णादि दश धातुओं स्वर्ण–रजत, ताम्र, लोह–नाग–वङ्ग और मिश्र लोहादि धातुओं का शोधन–मारण और गुणों का वर्णन किया गया हैं। इस ग्रन्थ में आचार्य जी ने एक बड़ी अच्छी बात कही है कि रजत और नाग भस्मों का अकेला प्रयोग कभी भी नहीं करना चाहिए। आचार्य श्री बिन्दु ने हीरा और मुक्ता की उत्पत्ति के साथ–साथ ज्ञान–रत्नों के दोष–गुणादि का भी विस्तार से वर्णन किया है। अन्त में हम इस ग्रन्थ के विषय में यही कह सकते है कि भले ही यह ग्रन्थ एक लघु रसपद्धति ग्रन्थ है किन्तु यह ग्रन्थ अपने आप में एक पूर्ण ग्रन्थ है।[1]

रसरत्नाकर – रसरत्नाकर ग्रन्थ अपने आप में एक महान ग्रन्थ माना जाता हैं। इस ग्रन्थ के लेखक पार्वतीपुत्र सिद्ध नित्यनाथ जी है इस ग्रन्थ के मुख्यतः पाँच भाग है जिनके नाम इस प्रकार से हैं – रसखण्ड, रसेन्द्रखण्ड, वादिखण्ड, रसायनखण्ड तथा मन्त्रखण्ड। रसरत्नाकर ग्रन्थ में नित्यनाथ का नाम रस के आचार्यों में उल्लिखित है इससे यह स्पष्ट होता है कि यह ग्रन्थ तरेहवीं शताब्दी से पहले का ग्रन्थ हैं। यह एक विशाल ग्रन्थ है और इस ग्रन्थ में योगों की एक बड़ी लम्बी संख्या दी गई है। इस ग्रन्थ में गुरुमुख से सुनी गई बातों के साथ–साथ स्वानुभूत विषयों का भी विवेचन किया गया हैं ग्रन्थकार का लक्ष्य इस ग्रन्थ को एक महान ग्रन्थ बनाना था और इस उद्देश्य में उन्हें पूर्ण रूप से सफलता प्राप्त हुई हैं।[2] रसरत्नाकर के वादिखण्ड में बीस उपदेश

1. र० पद०, पृ० 9
2. (क) आयुर्वे० क० इ०, पृ० 51
   (ख) र० शा०, पृ० 109

मिलते है और उनमें से बीसवें उपदेश में पारद का भस्मीकरण, स्वर्ण, रजत, ताम्र, वंग, नाग आदि धातुओं की निर्माण क्रिया का वर्णन हैं।[1]

रसरत्नसमुच्चय – रसरत्नसमुच्चय ग्रन्थ के रचनाकार वाग्भट जी है इनके पिता का नाम सिंह गुप्त है रसरत्नसमुच्चय में चर्पटी तथा सिंहल के राजा का उल्लेख होने से यह माना जाता है कि इस ग्रन्थ का समय तेरहवीं शताब्दी रहा होगा।[2] इस ग्रन्थ के आरम्भ में जो मंगलाचरण किया गया है वह जगत के प्रधान भिषक–स्वरूप पारद की स्तुति का प्रतीक है। यह ग्रन्थ दो खण्डों में विभाजित है – पूर्वखण्ड और उत्तरखण्ड। सम्पूर्ण खण्ड में तीस अध्याय है जिनमें से पूर्व खण्ड में 11 और शेष उत्तर खण्ड में 19 अध्याय है। रसायन शास्त्र की दृष्टि से पूर्व खण्ड विशेष महत्त्वपूर्ण है और चिकित्सकों की दृष्टि से उत्तर खण्ड को मान्यता दी जाती है।[3] रसरत्नसमुच्चय ग्रन्थ में धातुओं और मिश्र धातुओं का भी विवरण मिलता है जैसे यहाँ बताया गया है कि सोना पाँच प्रकार का होता है – प्राकृतिक, सहज, वह्निसंभूत, खनिसम्भव और रसेन्द्रवेधसंजात। चाँदी भी तीन प्रकार की होती है – सहज, खनिसंज्ञात और कृत्रिम। लोहे को सीसा और सुहागे के साथ गलाने पर शुद्धिकरण होता है। ताँबा दो प्रकार का होता है – नेपालक और म्लेच्छ। ताँबे के पत्र को नीबू के रस से रगड़ कर गन्धक और पारे से लिप्त करे और फिर तीन बार गर्म करने पर यह मर जाता है। इसके अतिरिक्त इस ग्रन्थ में लोहे के भी भेदों का वर्णन मिलता है। इसके तीन भेद पाये जाते है – मुण्ड, तीक्ष्ण और कान्त। मुण्ड के तीन, तीक्ष्ण के छः और कान्त के पाँच प्रकार है। लोहे की मारणविधि इस प्रकार है – एक भाग लोहे में बीसवां भाग हिंगुल मिलाकर उसे नीबू के रस में

1. विंशतितमे उपदेशे पारदबन्धनप्रकाराः तदभस्मीकरण–ताम्र–रजत–वंग–नागप्रभृतिभिद्रव्यैः कृत्रिमस्वर्णनिर्माण–रजत–निर्माण–प्रक्रियाः दर्शिताः। र० रत्०, पृ० 12
2. र० शा०, पृ० 110
3. प्रा० भा० में रसा० क० वि०, अ०–20, पृ० 464

मिलाकर चालीस बार मुषा में बन्द करके गर्म करें। इस प्रकार इस ग्रन्थ में बहुत सी धातुओं का वर्णन किया गया है।[1]

रसप्रदीप – यह ग्रन्थ आचार्य प्राणनाथ द्वारा लिखा गया है। रसप्रदीप इस युग का प्रतिनिधि ग्रन्थ रहा है। इस ग्रन्थ का रचना काल 16वीं शती माना जाता है। 'धातुक्रिया' ग्रन्थ का रचना काल भी इसी शती में प्रतीत होता है। इस ग्रन्थ में ताम्र की उत्पत्ति के प्रसंग में फिरंग देश तथा रूस देश का नाम आता है। यह ग्रन्थ आधुनिक धातुविज्ञान का प्रामाणिक और प्रतिनिधि ग्रन्थ माना जाता है, क्योंकि यहाँ अनेक धातुओं के स्वरूप, उत्पत्ति, स्थान, विशिष्टता आदि का विवरण विस्तार से दिया गया हैं। इन सब धातुओं का वर्णन करने से ही इस ग्रन्थ को इतनी मान्यता मिली है और यह ग्रन्थ इस युग का अच्छा ग्रन्थ माना जाता है।[2]

रसार्णव – रसार्णव ग्रन्थ में श्री देव्युवाच और श्री भैरव उवाच के रूप में पार्वती और परमेश्वर के बीच में संवाद दिये गये हैं, अर्थात् कहने का तात्पर्य यह है कि यह सम्पूर्ण ग्रन्थ शिव–पार्वती के संवाद रूप में ही प्रसिद्ध हैं।[3] इस ग्रन्थ के अध्यायों का नाम 'पटल' है और यह 18 पटलों में विभाजित है। यह ग्रन्थ बारहवीं शती का माना जाता है। इस ग्रन्थ में रसशोधन के लिए उपयोगी सामग्री का विस्तृत विवरण मिलता हैं यहाँ पर एक विशेष वैज्ञानिक तथ्य का वर्णन किया गया है जिससे यह स्पष्ट होता है कि किस धातु की ज्वाला किस रंग की होती है। आजकल भी धातुवैज्ञानिक इस तथ्य का उपयोग लोहे तथा ताँबें की प्राप्ति में करते हैं। रसार्णव ग्रन्थ के अनुशीलन से स्पष्ट पता चलता है कि उस समय कच्चे धातु में से शुद्ध धातु के निकालने की प्रथा जारी हो गई थी और रसायन विद्या अपनी प्रारंभिक अवस्था को पार

1. आयुर्वे० क० इ०, पृ० 50
2. वही, पृ० 52
3. प्रा० भा० में रसा० क० वि०, अ०–15, पृ० 348

करके प्रगति के मार्ग पर आगे बढ़ रही थी।[1] रसार्णव ग्रन्थ में भिन्न–भिन्न धातुओं की ज्वाला का रंग भिन्न–भिन्न होता है। रसार्णव ग्रन्थ के पटलों की समाप्ति कर इस प्रकार के वचन आते हैं – ''इति श्रीपार्वतीपरमेश्वरसंवादे रसार्णवे रससंहितायां बालजारणं नाम एकादशः पटलः''।[2]

रसप्रकाश सुधाकर – इस ग्रन्थ के रचनाकार श्री यशोधर जूनागढ़ के रहने वाले गुजराती श्री गौड़ ब्राह्मण थे, इनके पिता का नाम पद्मनाभ था यह ग्रन्थ बारहवीं शताब्दी का माना जाता हैं। इस ग्रन्थ की विशेषता यह है कि ग्रन्थकार ने बहुत से प्रयोग अपने हाथ से किये हैं। यह ग्रन्थ बारह अध्यायों में विभाजित किया गया है।[3] इस ग्रन्थ में पारद के अतिरिक्त रसोपरस, यन्त्र, मूषा, लोह, रत्न आदि का विशद विवेचन किया गया है इसके अतिरिक्त इस ग्रन्थ के आंठवें अध्याय में 103 रसौषधियों के निर्माण का वर्णन भी मिलता है तथा स्वर्ण, रौप्य, मौक्तिक, प्रवाल आदि अनेक द्रव्यों का निर्माण भी बताया गया हैं। यह ग्रन्थ अपने आप में एक पूर्ण ग्रन्थ माना जाता हैं।[4] इस ग्रन्थ में स्वर्ण बनाने की विधि का वर्णन भी ग्रन्थकार ने किया है जिसमें उन्होंने प्राचीन पद्धति के साथ अपने अनुभव को भी स्पष्ट रूप में प्रस्तुत किया है। इस प्रकार यशोदर का यह 'रसप्रकाश सुधाकर' नामक ग्रन्थ निजी अनुभव पर आश्रित होने के कारण उपादेय तथा उपयोगी माना जाता है।[5]

रससार – रससार ग्रन्थ के लेखक श्री 'गोविन्दाचार्य' जी है यह ग्रन्थ पन्द्रहवीं शताब्दी में लिखा गया था इस ग्रन्थ के लेखक कापालिक परम्परा में दीक्षित थे इस ग्रन्थ में पारद के अठारह संस्कार और रसशास्त्र के प्रसिद्ध विषय दिये

---

1. आयुर्वे० क० इ०, पृ० 48
2. प्रा० भा० में रसा० क० वि०, अ०–15, पृ० 349
3. आयुर्वे० क० इ०, पृ० 48
4. वही, पृ० 29
5. वही, पृ० 48

गए है। अर्थात् यह सम्पूर्ण ग्रन्थ केवल पारद पर ही अनेक तथ्यों को प्रकाशित करने में सफल रहा है।[1] इस ग्रन्थ में 26 पटल है और दूसरे पटल में अष्ट धातुओं का वर्णन प्राप्त होता है।[2] इस ग्रन्थ का ज्ञान परम गोपनीय, रक्षणीय और गुह्य है, इसे न तो कुशिष्य को दे, और न ही किसी दूसरे शिष्य को देना चाहिए।

इदं च परमं गुह्यं रक्षणीयं प्रयत्नतः।

कुशिष्येभ्योऽन्यशिष्येभ्यो न देयं दस्य कस्यचित्।।[3]

शाङ्र्गधर संहिता – यह ग्रन्थ 13वीं शताब्दी के प्रारम्भ में आचार्य शाङ्र्गधर मिश्र द्वारा लिखा गया था। यह ग्रन्थ 3 खण्डों में (पूर्व, मध्य और उत्तर खण्ड) हैं। प्रथम खण्ड में सात अध्याय हैं, द्वितीय में बारह अध्याय और तृतीय खण्ड में तेरह अध्याय है। इस ग्रन्थ को सुबोध लिखा गया है।[4] इसमें औषधि निर्माण के सूक्ष्मतम विषयों की महत्त्वपूर्ण परिभाषा का उल्लेख हुआ है। साथ ही इसमें रसशास्त्रीय द्रव्यों का शोधन एवं मारण की उल्लेख हुआ है। 14वीं शताब्दी में इस पर विद्वान् 'आठमल्ल' के द्वारा संस्कृत टीका लिखी गयी थी, जो अत्याधिक महत्त्वपूर्ण है। आज इस ग्रन्थ की अनेक टीकाएँ उपलब्ध है।[5]

भावप्रकाश – भावमिश्र द्वारा रचित यह ग्रन्थ 13वी शताब्दी में लिखा गया था। यह ग्रन्थ आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। यह ग्रन्थ दो भागों में प्रकाशित है। प्रथम पूर्वखण्ड, द्वितीय चिकित्साखण्ड। पूर्वखण्ड में दिनर्चया तथा रात्रिचर्या औद्भिद्, खनिज, जान्तव द्रव्यों का वर्णन,

---

1. (क) आयुर्वे० र० शा०, पृ० 35
   (ख) र० शा०, पृ० 108
2. प्रा० भा० में रसा० क० वि०, अ०–17, पृ० 416
3. र० सा० 26/40
4. प्रा० भा० में रसा० का वि०, अ०–8, पृ० 233
5. आयुर्वे० र० शा०, पृ० 33

पर्याय, गुणधर्म, उपयोगविधि का वर्णन हुआ है। चिकित्साखण्ड में चिकित्सासूत्र के साथ अनेक नये योगों का आविष्कार कर तथा फिरङ्ग आदि तत्सामयिक रोगों और उनकी चिकित्सा का वर्णन सर्वप्रथम इस ग्रन्थ में हुआ है। नवीन द्रव्यों का वर्णन, रसशास्त्रीय सभी द्रव्यों का वर्णन, गुण–दोष–शोधन–मारण और इनके द्वारा निमित्त अनेक योगों का वर्णन इस ग्रन्थ में मिलता है। वृहत्यत्री के बाद आयुर्वेद में भावमिश्र का स्थान अग्रगण्य है। यह द्रव्यगुण का आधारभूत ग्रन्थ माना जाता है। आज इस ग्रन्थ पर अनेक टीकाएँ उपलब्ध हैं।[1]

रसकामधेनु – रसकामधेनु ग्रन्थ आचार्य 'श्री चूड़ामणि मिश्र' द्वारा रचित 17वीं शताब्दी का हैं इस ग्रन्थ में इन्होंने अपने पूर्ववर्ती सभी रसग्रन्थों के मौलिक विचारों का संकलन किया है। इस ग्रन्थ में चार पाद हैं – (1) उपकरणपाद, (2) धातुसंग्रहपाद, (3) सूतक्रियापाद, (4) चिकित्सापाद। इन चार पादों में रसेश्वर सिद्धान्त का वर्णन हुआ है। चतुर्थपाद में एक हजार से अधिक रस योगों का संग्रह इस ग्रन्थ में हुआ है, जो आज मिलना कठिन है, किन्तु आज इस ग्रन्थ की टीकाएँ प्राप्त होती है।[2]

आयुर्वेदप्रकाश – यह ग्रन्थ 18वीं शताब्दी में आचार्य माधव के द्वारा रचित है। रसशास्त्र के लिए यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में पारद का विस्तार से विवेचन हुआ है। इस ग्रन्थ में 6 अध्याय है। प्रथम अध्याय सबसे विस्तृत है। इस ग्रन्थ में धातुओं के शोधन, मारण, गुण आदि का विस्तृत विवेचन हुआ है। रसशास्त्र में यह ग्रन्थ अपना विशिष्ट स्थान रखता है।[3]

---

1. आयुर्वे० र० शा०, पृ० 35
2. वही, पृ० 37
3. (क) वही, पृ० 37–38
   (ख) र० शा० 4, पृ० 115

योगरत्नाकर – यह ग्रन्थ 18वीं शताब्दी का है। यह औषधि योगों एवं चिकित्सा का प्रधान ग्रन्थ माना जाता है। इसमें काष्टौषधि और रसौषधि योगों का विस्तार से वर्णन हुआ है। इसमें रसशास्त्रीय सभी द्रव्यों का शोधन, मारण, गुण, दोषों का वर्णन हुआ है। यह ग्रन्थ चिकित्सकों के लिए अत्यन्त उपयोगी है।[1]

भैषज्यरत्नावली – यह ग्रन्थ 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में आचार्य गोविन्ददास सेन के द्वारा लिखा गया था। यह ग्रन्थ सभी रोगों की चिकित्सा के साथ–साथ सभी प्रकार के आयुर्वेदीय औषधियों का विस्तृत भण्डार है। इस ग्रन्थ में प्रत्येक द्रव्यों, धातु, उपधातुओं की भस्म में औषधि निर्माण का उल्लेख हुआ है। यह ग्रन्थ जिसे आज की भाषा में Ayurvedic Formulary का एकमात्र विस्तृत एवं प्रामाणिक संग्रह माना जाता है।[2]

बृहद्रसराजसुन्दरम – यह ग्रन्थ 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में मथुरा निवासी पं० दत्तराम चौबे के द्वारा लिखा गया था। ग्रन्थकार ने अपने पूर्ववर्ती सभी रसग्रन्थों के विचार संङ्कलित करके तथा अपने मौलिक विचारों का भी स्थान–स्थान पर संग्रह किया है। इस ग्रन्थ में द्रव्यों का शोधन, मारण, गुण आदि का विस्तृत विवेचन हुआ है।[3]

प्राचीन भारत में रसायन का विकास – आधुनिक रसायन शास्त्र के मूर्धन्य विद्वान् एवं प्रख्यात लेखक डॉ० सत्यप्रकाश डी० एस० सी० के द्वारा यह बृहद् एवं प्रामाणिक ग्रन्थ लिखा गया है।[4] इस ग्रन्थ की सुविधा के लिए इसे 6 खण्डों में विभाजित किया गया है। प्रथम चार खण्डों में उस सामग्री का उपयोग किया गया है, जो हमारे विविध साहित्य में बिखरी पड़ी है। इसे

1. आयुर्वे० र० शा०, पृ० 38
2. वही, पृ० 38
3. वही, पृ० 39
4. वही, पृ० 44

क्रमशः चार कालों में रखा गया है – (1) वैदिक और ब्राह्मणकाल, (2) आयुर्वेद काल, (3) नागार्जुन काल और रसतन्त्र का आरम्भ, एवं (4) रस–तन्त्र का उत्तरकाल। यह विवरण वैदिक युग से लेकर 16–17 वीं शताब्दी तक का है। ग्रन्थ के 5वें खण्ड में दार्शनिक विचारों का संक्षिप्त विवरण दिया गया है, एवं अन्तिम खण्ड में दैनिक उपयोग की उन सामग्रियों की चर्चा हुई है, जिनमें रसायन का उपयोग प्रत्यक्षतः अथवा परोक्षतः प्रत्येक युग में होता आ रहा है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह ग्रन्थ बहुत महत्त्वपूर्ण है।[1]

आयुर्वेदीय रसशास्त्र – आयुर्वेदीय रसशास्त्र आयुर्वेद का एक महान और सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ रहा है यह ग्रन्थ सामान्य जनता के लिये जितना उपयोगी और साधारण प्रतीत होता है उतना ही एक रसशास्त्र मर्मज्ञ के लिये निर्गूढ़ है, क्योंकि सृष्टि के आदिकाल से ही प्रकृति की रसायन शाला में निरन्तर होने वाले परिवर्तनों की घटना एक बहुत बड़ी समस्या रही हैं किन्तु यह कौन जानता था कि पृथ्वी के अनन्तगर्भ से निकलने वाले अगणित पदार्थ – सोना, चाँदी, लोहा आदि धातुएँ अपना एक अलग अस्तित्व स्थापित कर लेंगे जिससे निरन्तर होने वाली समस्याओं का निवारण हो जाएगा।[2] आयुर्वेदीय रसशास्त्र ग्रन्थ का अपना एक विशेष महत्त्व रहा है यह रसशास्त्र मात्र एक चिकित्सा शास्त्र ही नहीं है। अपितु यह रसशास्त्र एक विशिष्ट शास्त्र है। क्योंकि इस ग्रन्थ का अतीत स्वर्णाक्षरों में लिखा गया हैं। आयुर्वेदीय रसशास्त्र के आदि आचार्य आदिनाथ स्वयं भगवान शिव शंकर ही है। उनके द्वारा सूत्र रूप में कथित यह शास्त्र सर्वप्रथम देहवाद के लिए प्रयुक्त हुआ था, किन्तु बाद में आचार्यों ने इसे पल्लवित, पुष्पित एवं फलित कर लोहवद और चिकित्सावाद में विकसित किया।[3]

---

1. प्रा० भा० में रसा० का वि०, पृ० 11, 12
2. रसे० सा० सं०, पृ० 9
3. आयुर्वे० र० शा०, पृ० 13

आयुर्वेदीय रसशास्त्र ग्रन्थ के रचयिता डॉ० सिद्धिनन्दन मिश्र जी है उन्होंने इस ग्रन्थ को बहुत ही अच्छे ढंग से निर्मित किया है। इस ग्रन्थ की अनेक विशेषताएँ हैं। जैसे रसशास्त्र का वृहद् इतिहास, रस ग्रन्थों की विशेष सूची, रसशास्त्र से सम्बन्धित सामान्य परिभाषा, सचित्र, यन्त्र, मूषा, कोष्ठी, मुद्रा, रसशालानिर्माणविधि एवं उनके पारदादि सभी द्रव्यों का विस्तृत विवेचन, उनका शोधन मारण एवं कुछ अनुभूत विधियाँ, उनके गुण, धर्म मात्रा, अनुपान एवं उन भस्मों से निर्मित कुछ प्रमुख योगों और उनके स्वरूप एवं भस्मों का विश्लेषण आदि का विशेष वर्णन किया गया है।[1]

I.ii धातु का सामान्य परिचय –

I.ii.1 भूमिका

विज्ञान – निर्मल, सूक्ष्म, निर्विकल्प और अव्यय (सदैव विकार रहित एक स्वरूप) जो ज्ञान है, वही विज्ञान है और इतर ज्ञान सब के सब अज्ञान है।[2]

प्राचीन संस्कृत साहित्य में विज्ञान की उपासना के विषय में यह बताया गया है कि – 'विज्ञान ही ध्यान से श्रेष्ठ है'। विज्ञान से ही पुरुष ऋग्वेद समझता है तथा विज्ञान से ही यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, वेदो में पाँचवे वेद इतिहास, पुराण, व्याकरण, श्राद्धकल्प, गणित, उत्पात ज्ञान, निधि ज्ञान, तर्कशास्त्र, नीतिशास्त्र, देवविद्या (निरुक्त) ब्रह्मविद्या, भूतविद्या, धनुर्वेद, ज्योतिष, गरुड़ और शिल्पविद्या, द्युलोक, पृथ्वी, वायु, आकाश, जल तेज, देव, मनुष्य, पशु, पक्षी, तृण, वनस्पति, श्वापद, कीट–पंतग पिपीलिक पर्यन्त सम्पूर्ण जीव, धर्म, अधर्म, सत्य, असत्य, साधु, असाधु, मनोज्ञ, अमनोज्ञ, अन्न रस तथा इहलोक और परलोक को जानता है।[3] यह भी कहा गया है कि वह जो

---

1. आयुर्वे० र० शा०, पृ० 18
2. विज्ञानं निर्मल सूक्ष्म निर्विकल्पं तद्व्ययम्।
   अज्ञानमितरत्सर्वम् विज्ञानम् इति तन्मतम्।। क्० पु० उ० म० 2/40
3. छा० उप० 7/7/1

विज्ञान की 'यह ब्रह्म है' ऐसी उपासना करता है, उसे ज्ञानवान एवं विज्ञानवान लोगों की प्राप्ति होती है। जहाँ तक विज्ञान की गति है वहाँ तक उसकी स्वेच्छांगति हो जाती है।[1] प्राचीन काल में ज्ञान को विज्ञान के रूप में महत्व देकर उसकी उपासना के विषय में कहते है कि सभी देव विज्ञान की ब्रह्म रुप से तथा ज्येष्ठ रुप से उपासना करते है।[2]

विज्ञान ही जानने योग्य है, जिस समय पुरुष सत्य को विशेषरुप से जानता है तभी वह सत्य बोलता है, बिना जाने सत्य नहीं बोलता, अपितु विशेष रुप से जानने वाला ही सत्य का कथन करता है। अतः विज्ञान को विशेष रुप से जानने की जिज्ञासा करनी चाहिए।[3]

विज्ञान से यज्ञ तथा कर्मों का विस्तार होता है।[4] विशिष्ट ज्ञान के अर्थ में विज्ञान शब्द का प्रयोग है।[5] आत्म शब्द के प्रतिनिधिरुप में विज्ञान शब्द का व्यवहार हुआ है।[6] वेद के अन्दर जो ज्ञान है, वही विज्ञान है।[7] ''श्रीमद्गीतार्थ संग्रह में ज्ञान और क्रिया को ही विज्ञान बताया है। अर्थात् विज्ञान का तात्पर्य ज्ञान और क्रिया है। इन्हें जान लेने के पश्चात् तो कुछ भी जानना शेष नहीं रहता, क्योंकि सभी ज्ञातव्य विषय ज्ञान क्रिया में टिका रहता है।[8]

---

1. स यो विज्ञानं ब्रह्मेत्युपास्ते विज्ञानवतौ वै स लोकज्ज्ञानवतोऽभिसिध्यति यावद्विज्ञानस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो विज्ञानं ब्रह्मत्युपास्तेऽस्ति भगवा विज्ञानाद्भ्य इति विज्ञानाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति। छा० उप० 7/7/2
2. विज्ञानं देवा, सर्वे ब्रह्म ज्येष्ठगुपास्ते।। तै० उप० 2/5/1
3. यदा वै विज्ञानात्यथ सत्यं वदति नाविजानन्सत्यं वदति विज्ञानन्वेव सत्यं वदति विज्ञानं त्वेव विजिज्ञासितव्यमिति विज्ञानं भगवो विजिज्ञासु इति। छा० उप० 17/7/2
4. विज्ञानं यज्ञं तनुते, कर्माणि तनुतेऽपि च। त्तै० आ० 9/5/1
5. ''तद्विज्ञानार्थ स गुरूमेवाभिगच्छेत'' मुड० उप० 1/2/12
6. ''आत्मा विज्ञानम्''। ''विज्ञानमात्मा'' छा० उप० 7/26/1
7. यो विज्ञाने तिष्ठविज्ञानादान्तरो यं विज्ञानं न वेद यस्य विज्ञानं शरीरं यो विज्ञानमन्तरों यमयत्येव तं आत्माऽन्तर्याम्यतमृतः।। बृह० उप० 3/7/22
8. ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वज्ञ्याम्यशेषतः।
यज्ज्ञात्वा न पुनः किचिज्ज्ञातव्यमवशिब्यते।। श्रीमद् भग० गी० 7/2

श्री मद्भगवद्गीता का 9वाँ अध्याय पढ़ने से ज्ञात होता है, कि पाश्चात्य भाषा में जिस श्रेणी के ज्ञान को Science कहते है, श्रीमद्भगवद्गीता में उसी श्रेणी के ज्ञान को विज्ञान कहा है।

आधुनिक युग विज्ञान का युग है। वर्तमान युग में विज्ञान उन्नति के चरमशिखर पर हैं। संसार का कोई क्षेत्र ऐसा नहीं जहाँ विज्ञान ने अपना स्थान न बनाया हो, किन्तु इस वैज्ञानिक युग में भी कुछ गूढ़ रहस्य ऐसे है जो प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में 'संस्कृत ग्रन्थों में धातु विज्ञान' के रूप में वर्णित वैज्ञानिक पक्ष को ध्यान में रख कर लिखा गया है। विज्ञान का सामान्य अर्थ 'किसी अनुसलझे तथ्य के विषय में जानना' या किसी विषय को क्रमबद्ध रूप देना।'' विज्ञान की अनेक शाखाएँ है। जैसे पदार्थ विज्ञान, रसायन–विज्ञान, चिकित्सा–विज्ञान, ज्योर्ति–विज्ञान, जीवविज्ञान, भूगोलविज्ञान, गणितविज्ञान, समाज विज्ञान, शरीर विज्ञान, धातु विज्ञान और कृषि विज्ञान। इनमें से धातु विज्ञान प्रस्तुत शोध का विषय है।

धातु – धातु शब्द 'धातु–त्रय के रूप में परिचित किया जाता है।

1. संस्कृत की धातु शब्दावली अर्थात् व्याकरणिक
2. शारीरिक धातु
3. धातुविज्ञान (खनिज विज्ञान)

सर्वप्रथम व्याकरणिक दृष्टि से धातु शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार से है– डु धाञ् धारणपोषणयोः (धातुपाठ, जुहोत्यादि गण 10) धातु से औणादिक तुन् प्रत्यय होकर धातु शब्द निष्पन्न होता है। जिसका 'धीयते सर्वमस्मिन्निति' निर्वचन के अनुसार अर्थ है – जिसमें वस्तु का धारण एवं पोषण होता है।[1]

---

1. (क) धा (धातु) तुन् (धीयते सर्त्वमस्मिन्निति)। श० क० द्र० – द्वि भा०, पृ० 790
   (ख) पा० श० अनु० – उण० 1/69

भूवादयो धातव – 'भू' आदि 'वा' सदृश (धातवः) धातु संज्ञक होते है। 'भू' का अभिप्राय सम्पूर्ण 'धातुपाठ' से है। 'वा' धातु जिसका अर्थ है – जाना। इस सूत्र का भावार्थ यह है कि 'वा' सदृश क्रियावाची 'भू' आदि धातु कहलाते है। अर्थात् जब 'धातुपाठ' में पठित शब्द क्रिया अर्थ में प्रयुक्त होते हैं, तब उन्हें 'धातु' कहते है। क्रिया कार्य को कहते है, जैसे खाना, पीना आदि। 'धातुपाठ' में पठित शब्द यदि इस प्रकार की किसी भी क्रिया को प्रकट करे तो वह धातुसंज्ञक होता है।[1] शब्दों के विविध रूपों को धारण करने वाले को 'धातु' कहते है।[2]

इस प्रकार आवश्यकतानुसार विविध रूपों में परिणत होने वाले शब्द ही आदि भाषा संस्कृत के मूल शब्द है। अतः ये मूलभूत शब्द ही नाम आख्यात और अवयव रूप विविधप्रकार के शब्दों में परिणत होते है अतः सब धातुज है। अति प्राचीनकाल के भारतीय भाषाविद् उक्त प्रकार के मूलभूत शब्दों को ही 'धातु' कहते है।[3]

शारीरिक दृष्टि से धातु –

'धारणाद् धातवः स्मृताः' – जो शरीर को धारण करता है उसे धातु कहते है। 'डु धाञ् धारणपोषणयोः – धातु से 'धातु' शब्द की निष्पति होती है – शरीर का धारण या पोषण करने के कारण रस एवं रक्त आदि द्रव्य 'धातु' कहे जाते है।[4]

धातु शब्द का अर्थ – आरोग्यता उत्पादन करना है अर्थात् अस्वस्थ (विकृति) तथा स्वस्थ (प्रकृति) के लक्षण धातुओं की विषमता को रोग कहा

---

1. (क) भूवादयो धातवः क्रियावाचिनो भ्वादयो धतुसंज्ञाः स्युः। ल० सि० कौ०, पृ० 50
   (ख) अष्टा० 1/3
2. (क) वै० सि० कौ०, पृ० 19
   (ख) सं० व्या० शा० का० इ०, पृ० 16
3. सं० व्या० शा० का इ०, पृ० 18
4. त एते शरीरधारणाद्धातवः इत्युच्यन्ते। सु० स० सू० स० 14/20

जाता है, धातुओं की समता का नाम प्रकृति (स्वस्थावस्था) है, आरोग्यावस्था का नाम सुख है और विकार रोगावस्था का नाम दुःख है।[1]

रस, रक्त, मांस, मेद, हड्डी, मज्जा और शुक्र ये सात पदार्थ स्वयं स्थित होकर मनुष्यों के देह को धारण करते हैं। अतएव ये धातु कहलाते है।[2]

खनिज पदार्थ के अर्न्तगत धातु

स्वर्ण, रजत आदि द्रव्यों को धातु शब्द से व्यवहार में लाने का कारण यह है कि इनके प्रयोग से किसी भी समय में होने वाले खालित्य (बालों का उड़ना) पालित्य (आकाल में ही बालों का सफेद होना), कृशता (शरीर का सूखना) तथा बुढ़ापा आदि लक्षण अथवा रोग दूर होकर शरीर दृढ़ और कार्यक्षम (धारण समय) होता है। और साथ ही मनुष्य बहुत दिनों तक स्वस्थ रहता हुआ सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करता है।[3]

धातुपरीक्षण में तीन मुख्य विशेषताएँ है – जिससे धातु और अधातु के बीच भेद किया जाता है **1.** कोई भी खनिज द्रव्य (धातु), आभा और प्रभाव वाला होता है। **2.** धातु न्यूनाधिक रूप में विद्युत धारा को वहन करने वाले होते हैं। **3.** बिना रासायनिक विधि से धातु, मद्यसार, तेल, ग्लिसरीन आदि में नहीं घुलते हैं। इससे यह भी धातु शब्द से ज्ञान हो सकता है जो द्रव्य हमारे शरीर में आभा प्रभा के उत्पादक से और जिससे हमारे शरीर में विद्युत् धारा वाली गति हो और जिससे शरीर की वृद्धि हो वे सब धातु शब्द में कहे जा सकते है।[4]

---

1. विकारो धातुवैषम्यं साम्यं प्रकृतिरूच्यते।
   सुखसंज्ञकमारोग्यं विकारों दुःखमेव च।। च० सं० सू० सुं० 9/4
2. एते सप्त स्वयं स्थितवा देहं दधति यन्नृणाम्।
   रसासृङ्मांसमेदाऽस्थिमज्जशुक्राणि धातवः।। भा० प्र० नि० 1/1
3. खालितयमथ पालित्यं काश्र्य वाद्धकयमेव च।
   अपनीय दधत्येते देहं तद्धातवः स्मृताः। रसतरं० 15/1
4. वही, 15/ पृ० 360–361

सोना, चाँदी, ताँबा, राँगा, सीसा, यशद तथा लोहा, ये सात धातुएँ हैं इन्ही को लोहसप्तक या सप्तलोह भी कहा गया है।[1] और यह धातुएँ पर्वत मे उत्पन्न होने (खान से निकले) वाली है।

धातु परिगणन मे दो बार एक ही चीज को कहा गया है। इसका अभिप्राय यह है कि धातु और लोह ये दोनों परस्पर पर्यायवाचक है। अर्थात् लोह (Iron) को भी कहते हैं और स्वर्ण, रजत, ताम्र आदि को भी लोह कहा जाता है। क्योंकि प्राचीन ग्रन्थों में कर्षार्थवाची ''लुह'' धातु से लोह शब्द बनाया गया है। क्योंकि सम्पूर्ण धातुएँ पृथ्वी के अन्तराल से कर्षण (निकालना या खींचना) की जाती हैं। इससे एक दूसरा भाव भी ज्ञात होता है कि पृथ्वी से स्वतन्त्र रूप में प्राप्त होने वाले लोह को ही धातु शब्द से कहा जाता है न कि पित्तल तथा कांसा मिश्रित धातुओं को।[2] लोह शब्द से सभी प्रकार की धातुओं को ग्रहण किया जाता है। जो द्रव्य प्रस्तर एवं खनिज द्रव्यों से बलपूर्वक अर्थात् अग्नि में पिघलाकर खींचा जाए उसे लोह कहते है। जिन खनिज धातुओं के लिए लोह शब्द को प्रयोग होता है, वे लोह धातु तीन प्रकार की होती हैः जैसे **1.** शुद्ध लोह **2.** पूतिलोह **3.** मिश्रलोह। सोना, चाँदी, ताँबा और लोहा (मुण्ड, तीक्ष्ण, कान्त) – ये चार शुद्ध लोह हैं और नाग (सीस), वङ्ग

---

1. (क) स्वर्णं तारं तथा ताम्र वाङ्ंग सीसकमेव च।
   यशदं च तथा लोहं सप्तैते धातवः स्मृताः।।
   सवर्णचन्द्रलोहाकवङ्गाहियशदायसम्।
   लोहसप्तकमाख्यातं सप्तलोहञ्च सन्मतम्।। रसतरं० 8/2, 3
   (ख) स्वर्ण रूप्यं च ताम्रं च रङ्गं यशदमेव च।
   सीसं लौहं च सप्तैते धातवो गिरिसम्भवाः।। भा० प्र० नि० धात्० व० 8/1
   (ग) सुवर्ण रूप्यकं ताम्रं वङ्ंग जसदसीसकम्।
   लोहं चैते मताः सप्त धातवो गिरिसम्भवाः।। आयु० प्र० 3/1
   (घ) स्वर्णतारारताम्राणि नागवङ्गौ च तीक्ष्णकम्।
   धातवः सप्त विज्ञेयास्ततस्तान् शोधयेद् बुधः। शा० सं० 11/1
2. रसतरं० 15/ पृ० 361

(राङ्गा) ये दोनों पूतिलोह हैं और पित्तल, कांसा, रूवमलोह – यें तीनों मिश्रलोह है।[1]

संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ में भी धातु शब्द (धा + तुन्) सोना–चाँदी आदि खनिज पदार्थ के अन्तर्गत आता है।[2]

धातुओ का वर्गीकरण –

धातु का उत्पत्ति स्थान पृथ्वी है। इसलिए विभिन्न शास्त्रकारों तथा अर्थ वेताओं ने इस पृथ्वी को 'रत्नगर्भा वसुन्धरा' के नाम से कहा है। धातु शब्द का अर्थ पोषण करने से है 'डु–धाञ् धारण पोषणयोः' धातु से धारण और पोषण दोनों अर्थ में निष्पन्न होता है, धातृ बच्चे का पोषण करती है और धातु–धारण करता है।

वैदिक ग्रन्थों में खनिज पदार्थ, धातु और मिश्र धातुओं के उपयोग के बारे में पर्याप्त विवरण मिलता है। कृष्ण यजुर्वेद का एक उदाहरण इस प्रकार से है –

"अश्मा च में मृत्तिका च में गिरयश्च में पर्वताश्च में सिकता च में वनस्पतयश्च में हिरण्यश्च मेऽयश्च में श्यामं च मे लोहं च में सीसंच में त्रपुं च में यज्ञेन कल्पन्ताम्"।

मैं पत्थर, मिट्टी, पर्वत, गिरि, बालू, वनस्पति, सुवर्ण, ताम्र, त्रपु, सीस और लोह को चाहता हूँ।[3]

---

1. शुद्धलोहं कनकरजत भानुलोहाश्मसारं
   पूतीलोहं द्वितयमुदितं नागवङ्गाभिधानम्।
   मिश्रं लोहं त्रितयमुदितं पित्तलं कांस्यवर्तं।
   धातुर्लोहे लुह इति मतः सोऽत्यनेकार्थवाची।। र० र० स० 5/1
2. सं० श० कौ० पृ० 552
3. कृ० यजु० 4/7/5
   सं० वि०, पृ० 126

अर्थववेद में एक स्थान पर सोना–चाँदी एवं अन्य और लोहों को क्रमशः सत्त्व रज और तम से उपमा देकर बताया गया है।[1] एक स्थान पर शरीर के धातुओं से इन लोहादि धातुओं की तुलना की गयी है।[2]

आयुर्वेदीय संहिताओं में सर्वप्रथम चरकसंहिता में विभिन्न स्थानों पर आठ लोहों का वर्णन किया गया है।[3] सुश्रुतसंहिता में विभिन्न स्थलों पर आठ लोहों का वर्णन किया गया है।[4]

याज्ञवल्क्य संहिता में छः धातुओं का वर्गीकरण किया है। साथ ही अग्नि पर गलाने से धातुऐं किस अनुपात से नष्ट होती हैं, इसका वर्णन भी प्राचीन काल में सर्वप्रथम यहाँ मिलता है।[5] शुक्रनीति सार में सात धातुओं का वर्णन है। तथा इनसे भिन्न सात धातुओं की मिलावट से संकर जाति की धातु कहलाती है।[6]

मनुस्मृतिकार ने यह कहा है आठ धातुओं का शोधन क्षार और जल के प्रक्षालन करने से होता है।[7]

---

1. हरिते त्रीणि रजते त्रीण्यसि त्रीणि तपसा विष्ठितानि। अथ० वे० 4/27/1
2. श्याममयोऽस्य मांसानि लोहितमस्य लोहितम्।
   त्रपुभस्म हरितं वर्णः पुष्करमस्य गन्धः।। वही० 11/3/78
3. सुवर्णरूप्यत्रपुताम्ररीतिकांस्यास्थिशस्त्रद्रुमवेणुदन्तैः।
   नलैर्विषाणैर्मणिभिश्च तैस्तैः कार्याणि नेत्राणि त्रिकर्णिकानि।।
   सुवर्णरूप्यताम्राणि त्रपुसीसमयानि च। जिह्वा निर्लेखनानि स्यु.....
4. त्रपुसीसताम्ररजतकृष्णलोह सुवर्णानि लोहमलश्चेति।।
5. अष्ट० सं० सू० 12/12, 13, 14, 15, 16, 17
6. अग्नौ सुवर्णमक्षीणं द्विपले रजते शते।
   अष्टौ त्रपुणि सीसे च ताम्रे पञ्च दशायसि।। याज्ञ० स्मृ० व्यय० अ० 178
   सुवर्ण रजतं ताम्रं वङ्ग सीसश्च रङ्गकम्।
   लोहं च धातवः सप्त ह्येषामन्ये तु सङ्कराः।। शु० नी० सा० 4/88
7. अपामग्नेश्च संयोगाद् हेम रौप्यं च निर्वमौ।
   ताम्राय कांस्यरैतयानां त्रपुणः सीसकस्य च।।
   शौचं यर्थाहं कर्त्तव्यों क्षाराम्लोदक वारिभिः।। मनु० स्मृ० 5/114

रसार्णव नामक रसतन्त्र के कर्त्ता ने छः धातुओं का वर्गीकरण किया है, किन्तु उन्होने कृत्रिम लोह कास्य औ पित्तल का भी अन्यत्र यत्र तत्र उल्लेख किया है। आचार्य श्री ने इन छः धातुओं को क्रमशः अग्नि पर अक्षयी भी बताया है।[1] आचार्य गोविन्द ने रसहृदयतन्त्र नामक अपने ग्रन्थ में लोहों के वर्गीकरण को मुख्यतया तीन प्रकार से किया है, इन्होंने कुल 9 लोहों का वर्गीकरण किया है।

क) सारलोह – सुवर्ण, रजत

ख) सत्त्वलोह – ताम्र, पित्तल, तीक्ष्ण, कान्त और अभ्रकसत्व

ग) पूतिलोह – नाग, वङ्ग[2]

रसोपनिषतकार ने धातुवर्ग में सात लोहों का वर्णन किया है।[3] रसरत्न समुचयकार[4] श्री वाग्भट ने लोहों के वर्गीकरण में नौ धातुओं का उल्लेख किया किया है। यथा –

क) शुद्धलोह – सुवर्ण, रजत, ताम्र, कान्तलोह

ख) पूतीलोह – नाग – वङ्ग

ग) मिश्रलोह – पित्तल, कांस्य, वर्त।

पूतीलोह – पूती का अर्थ है – दुर्गन्ध। जिस लोह से किसी भी प्रकार की दुर्गन्ध निकलती हो उसे पूतीलोह कहते है। ये पूतिलोह तीव्राग्नि में बहुत देर

---

1. सुवर्णं रजतं ताम्रं तीक्ष्णं वङ्ग भुजङ्गकम्।
   लोहन्तु षड्विधं तत्त्व यथापूर्व तदक्षयम्।। रसार्णव 7/97
2. ताम्रारतीक्ष्णकान्ताभ्रसत्त्वलोहानि नागवङ्गौ च।
   कथितास्तु पूतिसंज्ञास्तेषां संशोधनं कार्यम्।। र० ह० त० 9/3
3. नागं वङ्गमतः शुल्व हैमं तीक्ष्णं तथाऽभ्रजम्।
   रजतञ्चेति सप्तैते प्रोक्ता लोहरसाः शुभाः।। रसो० नि० 4/6
4. शुद्धं लोहं कनकरजतं भानुलोहाश्मसारम्।
   पूती लोहं द्वितयमुदितं नागवङ्गाभिधानम्।।
   मिश्रं लोहं त्रितयमुदितं पितलं कांस्यवर्तम्।। र० र० स० 5/1

तक तपाने पर चूर्ण होकर अपने धातुत्व गुण को समाप्त कर देता है। साथ ही खुली हवा में रखने से इन लोहों की सतह मैली हो जाती है, अतः इन्हें पूतीलोह कहा जाता है।[1]

गोरक्षसंहिताकार आचार्य गोरखनाथ ने छः लोहा का ही वर्णन किया है तथा वर्गीकरण के साथ ही उनके रंगों का भी वर्णन किया है।[2] यथा स्वर्ण, रजत, ताम्र–तीक्ष्णलोह नाग और वङ्ग।

आनन्दकन्दकार ने तेरह लोहों की गणना का वर्गीकरण किया है। यथा सुवर्ण–रजत–ताम्र, कान्तलोह–तीक्ष्णलोह, मुण्डलोह–अभ्रकसत्त्व–नाग–वङ्ग–कास्य–पित्तल और वर्त मण्डूर।[3]

आचार्य शार्ङ्गधरमिश्र ने सात धातुओं का वर्गीकरण किया है। यथा स्वर्ण–रजत–पित्तल–ताम्र–नाग–वङ्ग और तीक्ष्णलोह।[4]

आचार्य बिन्दु ने अपने ग्रन्थ 'रसपद्धति' में नौ धातुओं का वर्गीकरण किया है। यथा–सुवर्ण–रजत–ताम्र–लोह–नाग–वङ्ग–कांस्य–पित्तल और वर्तलोह।[5]

आचार्य भावमिश्र ने अपने ग्रन्थ ''भावप्रकाश'' में सात लोहों का वर्गीकरण किया है। यथा सुवर्ण–रजत–ताम्र–लोह–सीस–वङ्ग और यशद[6] श्री

---

1. आयुर्वे० र० शा०, पृ० 411
2. अग्निसोमार्कतीक्ष्णानि नागं वङ्ग षडायसाः।
   पीतं सितं तथा रक्त कृष्णं श्यामं सितं बिन्दुः।। गो० सं० 2/41
3. सुवर्णरूप्यार्ककान्ताभ्रसत्वं तीक्ष्णं च मुण्डकम्।
   भुजङ्ग त्रपुसं चैव रीतिः कास्यं च वर्तकम्।।
   द्वादशैतानि लोहानि मण्डूरो लोहकिट्टकम्। आ० क० क्रि० 1/9
4. स्वर्णतारारताम्राणि नागवङ्गौ च तीक्ष्यणकम्।
   धातवः सप्तविज्ञेयास्ततस्तान् शोधयेदबुधः।। शार्ङ्० सं० 11/1
5. रूक्मं रौप्यमयांसिशुल्वमुरगं रङ्ग यशदमेव चं
   घोषं लोहमिदं त्रयं च चरमं नाम्नोपलोहं जगुः।। र० पु० 1/19
6. स्वर्ण रूप्यं च ताम्रं च रङ्ग यशदमेव च।
   सीसं लोहञ्ज सप्तैते धातवो गिरिसम्भवः।। भा० प्र० नि० 7/1

श्री गोविन्दाचार्य ने अपने ग्रन्थ ''रससार'' में आठ लोहों का वर्गीकरण किया है। यथा – सुवर्ण–रजत–ताम्र–लोह–नाग–वङ्ग–पित्तल और कांस्य।[1]

आयुर्वेदप्रकाशकार श्री माधव[2] तथा रसतरङ्गिणीकार श्री सदानन्द[3] शर्मा ने सात प्रकार की धातुओं का वर्गीकरण किया है। श्री पं० दत्त राम चौबे ने अपने ग्रन्थ ''बृहद्रसराजसुन्दम'' में अष्ट धातुओं का वर्गीकरण किया है।[4]

धातुओं की उत्पत्ति देवताओं के अंश से हुई है।[5]

1. सुवर्ण की उत्पत्ति दो प्रकार से हुई है। (अग्निवीर्य या अग्नि से और रसविद्ध)
2. रजत की उत्पत्ति चन्द्रमा से एवं परमेश्वर (शिव) से हुई है।
3. ताम्र की उत्पत्ति सूर्य से हुई है।
4. वङ्ग की उत्पत्ति इन्द्र के शरीर से हुई है।
5. सीसा की उत्पत्ति वासुकी नाग से हुई है।
6. लोहा की उत्पत्ति यमराज से हुई है जो साक्षात् कालमूर्ति है।

धातुओं के स्वाभाविक वर्ण –

डा० सिद्धिनन्दन मिश्र ने अपने ग्रन्थ ''आयुर्वेदीय रस शास्त्र'' में धातुओं के स्वाभाविक वर्ण का वर्गीकरण इस प्रकार से किया है – स्वभाव से ही स्वर्ण पीत वर्ण की है, रजत श्वेत वर्ण की, ताम्र रक्तवर्ण की, वङ्ग श्वेतवर्ण की,

---

1. सुवर्णं रजतं ताम्रं लोहं च त्रपुसीसकम्।
   रीतिका कांस्यकंचैन अष्टधातून् क्रमेण तु।। र० सा० 2/4
2. स्वर्णं रूप्यके ताम्रं वङ्ग जशदसीसकम्।
   लोहं चैते मताः सप्त धातवो गिरिसम्भवाः।। आयुर्वे० प्र० 3/1
3. सुवर्णं तारं तथा ताम्रं वङ्ग सीसकमेव च।
   यशदं च तथा लोहं सप्तैते धातवः स्मृताः।। रसतरं० 15/2
4. सुवर्णरजतताम्र त्रपुशीशकमायसं।
   षळैतानिचलोहानि कृत्रिमौकांस्यपित्तलौ। बृह० र० रा० सु० पृ० 57/1
5. स्वर्णं तु विद्वयग्निभवं हि वीर्यं चन्द्रस्य रौप्यं परमेश्वराच्च।
   शुल्बं सुजातं हि सहस्ररश्मेर्वङ्ग च शक्रकाद्वपुरादेऽपि।।
   सीसं च नागं खुल वासुकोर्हि लोहं यमादेन हि कालमूर्तेः।। र० का० धे० 2/1/4

नाग कृष्णवर्ण की, लोहा कृष्णवर्ण की, और पीतल एवं कांस्य क्रमशः पीत एवं श्वेतवर्ण की धातु है।[1]

I.ii.2 धातुओं की ज्वाला परीक्षा –

रसार्णव ग्रन्थ में धातुओं की ज्वाला परीक्षा का वर्णन इस प्रकार से हुआ है – सुवर्णादि धातुओं के महीन तारों या पत्रों को यदि प्रज्वलित अग्नि पर तपाया जाय तो सुवर्ण की पीतवर्ण की, रजत की श्वेत वर्ण की, ताम्र की नीलवर्ण की, तीक्ष्ण लोह की कृष्ण वर्ण की, वङ्ग की कपोताभ वण्र की, नाग की धूम्रवर्ण की, शिलाजतु की धूसरवर्ण की, लोहा की कपिल वर्ण की ज्वाला होती है।[2] सोना, चाँदी, ताँबा, पित्तल, सीसा, रांगा और लोहा यह सप्त धातुएँ अन्तिम लोहा पूर्वानुक्रम में एक दूसरे से श्रेष्ठ हैं। इनमें सोना सर्वश्रेष्ठ धातु मानी जाती है। वंग एवं कांसे के मिश्रण से ताँबा तथा तोबा एवं राँगा के मेल से पितल बनता है।[3]

धातुओ को अग्नि में पिघलाने पर क्षीणता –

याज्ञवल्क्य स्मृति में धातुाओं को अग्नि में पिघलाने पर उनकी क्षीणता का वर्णन इस प्रकार से किया है – सुवर्णादि धातुओं को यदि अग्नि में पिघलाया जाए तो सुवर्ण धातु का थोड़ा अंश भी क्षय नहीं होता है। 100 पल रजत यदि अग्नि में पिघलाया जाय तो 2 पल अर्थात् 2% रजत का क्षय होता है। 100 पल नाग–वङ्ग को यदि अग्नि में पिघलाया जाए तो 8 पल अर्थात् 8% नाग वङ्ग का क्षय होता है। 100 पल ताम्र पिघलाने पर 5 पल अर्थात्

---

1. स्वभावो रक्तता ताम्रे शौक्ल्यं तारे व्यवस्थितम्।
   ताम्रे पल्लवद्राग अयसे कृष्णता ध्रुवम्।।
   शौक्ल्यं काष्र्य च सहितं वङ्गनागे प्रपठ्यते।
   पित्तले कांस्यलोहे च पीतश्वेतावभासन्।। आयुर्वे० र० शा० पृ० 413
2. आर्क्तमाने कनके पीता तारे सिता प्रमा।
   शुल्बे नीलनिभा तीक्ष्णे कृष्णवर्णा सुरेश्वरि।।
   वङ्ेग ज्वाला कपोताभा नागे मलिनधूमका।
   शैले तु धूसरा देवि! अयसे कपिलप्रभा।। रसार्णव 5/49, 50
3. यथापूर्वं तु श्रेष्ठं स्यात् स्वर्णश्रेष्ठतरंमतम्।
   वङ्गताम्रभवं कास्यं पितले ताम्ररङ्गजम्।। शु० नी० सा० 4/89

5% ताम्र का क्षय होता है और 100 पल लोहा पिघलाने पर 10 पल अर्थात् 10% लोहा का क्षय होता है।[1]

I.ii.3 धातुओं का शोधन – सप्त धातुओं के शोधन का वर्णन अनेक ग्रन्थों में इस प्रकार से हुआ है –

1. शोधन करने योग्य धातुओं के पत्तले–पत्तले सूची वेध्य पत्र बनाकर कोयलों की अग्नि में लालवर्ण होने तक तपायें, अग्नितप में लाल होने पर उन्हे अग्नि में से निकालकर उसी क्षण काञ्जी में बुझा दें, इस प्रकार अग्नि में तपाकर तीन बार मठे में तीन बार कुलथक्वाथ में तीन बार गोमूत्र में तीन बार तिलतैल में बुझाये। इस प्रकार उक्त द्रवों में तीन–तीन बार बुझाने से सुवर्ण आदि सप्त धातुओं की शुद्धि हो जाती है।[2]

रसमंजरी एवं रसपद्धति ग्रन्थ में धातुओं की शुद्धि तेल, मठा और गौमूत्र में तथा कुलथी के काढ़ा कांजी में सुवर्णादि धातुओं को तपाकर सात बार बुझाने से सुवर्ण आदि लोह पर्यन्त धातुओं की शुद्धि निश्चय होती है।[3]

---

1. अग्नौ सुवर्णमक्षीणं रजते द्विपलं शते।
   अष्टौ त्रपुणि सीसे च ताम्रे पञ्च दशायसि।। याज्ञ० स्मृ० व्य० अ० 178
2. (क) सूचिवेध्यानि पत्राणि धातूनान्तु समाहरेत्।
   यावद्वह्निप्रभाणि स्युन्तुावद्वह्वौ प्रतापयेत्।
   स्नपयेत्तप्रतप्तानि काञ्जिके तु त्रिधा त्रिधा।
   तक्रे कुलत्थकथिते गोमूत्रत्रतिलतैलयोः।
   एवं विशुद्धिमायान्ति स्वर्णाद्याः सप्तधातवः।
   समासतः समाख्यातमिदं सामान्य शोधनम्।। रसतरं० 15/6
   (ख) स्वर्णतारारताम्रायः पत्राण्यग्नौ प्रतापयेत्।
   निषिञ्चेत्तप्ततैलानि तैले तक्रे गवां जले।।
   काञ्जिके च कुलत्थानां कषाये सप्तघा पृथक्।
   एवं स्वर्णादि लोहानां विशुद्धिः संप्रजायते।। रसे० चि० म० 6/314
   (ग) शार्ङ्ग० सं० 11/234
   (घ) यो० चि० म० 7/123
3. (क) तैले तक्रे गवां मूत्रे काथे कौलत्थकांजिके।
   तप्तं तप्तं निषिंचेत तप्तद्रावे तु सप्तधा।।
   स्वर्णादि लोह पर्यन्तं शुद्धिर्भवति निश्चितम्। र० मं० 5/2
   (ख) तक्रे काञ्जिकमूत्रयोस्तिलभवे तैले कुलित्थाम्भसि
   स्याच्छुद्धं परिवर्त्य लोहमखिलं त्रिःसप्तधा वापितम्।। र० पद० 62/49

बृहद्रसराजसुन्दरम् एवं रसरत्नाकर में धातुओं की शुद्धि इस प्रकार से हैः तोलभर सुवर्ण के केटकबेधी 8 पत्र करके, इसी रीति से चांदी, तांबे के पत्र करके, फिर इनको मीठे तेल, मठा, गौमूत्र कांजी में प्रत्येक पत्रों को गरम करके तीन–तीन बार बुझाने से सोना, चांदी, और तांबा शुद्ध हो जाते है, रांगा, जस्ता, शीशे को अलग–अलग गलाकर पूर्वोक्त तेलादि में बुझाने से ये तीनों शुद्ध हो जाते है और लोहे के टुकड़े को गरम करके तीन तीन बार बुझाने से लोहा शुद्ध हो जाता है।[1]

अन्य प्रकार से धातुओं की शुद्धि सब धातुओं के पत्रों को अग्नि में तपाकर अथवा पात्र में पिघलाकर केवल कदलीकन्दस्वरस में सात बार बुझाने से शुद्धि हो जाती है।[2]

धातुओं का मारण –

सप्त धातुओं में से किसी एक धातु (शुद्ध धातु) को मैनसिल गन्धक में मिलाकर आक के दूध में घोटकर सुखा लें। अन्त में इसको एक सम्पुट में बन्द करके यथायोग्य फूँक लें। इस प्रकार द्रव्यों के साथ धातु घोटकर तब तक पुट दें जब तक कि उस धातु की ठीक भस्म न हो जाए। इस विधि से प्रायः सभी धातुओं की भस्म हो जाती है।[3] पत्थर तोड़कर तथा सोना–चाँदी को

---

1. (क) तैले तक्रे गवांमूत्रे कांजिकेच कुलत्थके।
त्रिधा त्रिधा विशुद्धिः स्यात् स्वर्णादिनांसमासताः।। बृह० र० रा० सु० 50/6
समासतः समाख्यातमिदं सामान्य शोधनम्।। रसतरं० 15/6
(ख) तैले तक्रे गवां मूत्रे कांजिके रविदुग्धके।
कुलत्थानां कषाये च जम्बीराणां द्रवे तथा।। र० रत० 3/105
2. (क) प्रतप्तानि तु लोहानि रम्भामूलजले भिषक्।
निषेचयेत्सप्तवारं विशुद्धयन्ति न संशयः।। रसतरं० 15/7
(ख) तप्तानि सर्वलोहानि कदलीमूलवारिणि।
सप्तधाऽभिनिषिक्तानि शुद्धमायान्त्यनुत्तमाम्।। रसे० चि० म० 6/5
3. मनः शिलागन्धकरसूर्यदुग्धैः संमर्द्य खल्वे खलु सप्तलोहम्।
वन्योत्पलाग्नौ पुटितं प्रयत्नादनुत्त्मां याति मृतिं ह्यवश्यम्।। रसतरं० 15/8

गलाकर भस्म बनायी जाती है।[1] धातु रूपी हाथी को मारने के लिए गन्धक रूपी सिंह से बढ़कर कोई नही, अर्थात् गन्धक के योग से लगभग सभी धातुएँ मारी जा सकती है।[2]

धातुओं के मारणार्थ निर्धारित द्रव्य – सप्त धातुओं का किन–किन उपधातुओं या द्रव्यों के साथ मारण किए जाए इस प्रकार का उल्लेख अनेक ग्रन्थों में हुआ है –

1. सुवर्ण का मारण नाग (सीसा) से करे।, 2. रजत का मारण माक्षिक या स्नुही (सेहुंड) से दूध से करे।, 3. ताम्र का मारण गन्धक या बकरी के दूध से करें।, 4. वङ्ग का मारण हरताल से करें।, 5. नाग का मारण मैनसिल से करें। 6. लोह का मारण हिंगुल या स्त्री दूध से करें।, 7. अभ्रकसत्व का मारण हिंगुल या स्त्री दुग्ध से करें।, 8. उपलोहों का मारण गन्धक से करें।, 9. पारद का मारण हीरा से करें।[3]

धातु भस्मों के प्रकार –

1. उत्तम **2.** मध्यम **3.** कनिष्ठ **4.** निकृष्ट (अधम) भेद से धातु भस्मों के चार प्रकार बताये गये हैं। पारद से धातुओं का मारण करने से उत्तम भस्में बनती है, वानस्पतिक द्रव्यों से धातुओं भस्म करने पर मध्यम कोटि की भस्में बनती है। गन्धकादि द्रव्यों से धातुओं के भस्म पर कनिष्ठ कोटि की भस्में होती है

---

1. पाषाण धात्वादिदृतिस्तद् भस्मीकरणं कला। शु० नी० सा० 3, 4/73
2. न सोऽस्ति लोहमातङ्गों यं न गन्धकेसरी।
   निहन्याद् गन्धमात्रेण यद्धा माक्षिककेसरी।। रर्साणव० 7/150
3. (क) नागेन स्वर्ण रजतं च ताप्यैः गन्धेन ताम्रं शिलया च नागम्।
   तालेन वङ्ग त्रिविधं तु लोहं नारीपयो ध्नन्ति य हिङ्गलेन।।
   तथाऽभ्रसत्वं वलिनोपलोहं वज्रेण सूतं विनिहन्ति सद्यः।। आ० क० क्रि० 7/27, 28
   (ख) रसे० मं० 2/20–44,45,46
   (ग) रूक्मं शिलानागसुधार्द्रकेण तारं स्नहीक्षीरसमाक्षिकेण।
   शुल्वं त्वजाक्षीरसगन्धकेन वङ्गं पलाशद्रवतालकाभ्याम्।।
   शिलार्कदुग्धेन निहन्ति नागं सूतेन तीक्ष्णं दरदेन युक्तम्।। र० का० धे० 2/1/20
   (घ) प्रा० भा० मे र० का० वि०, पृ० 19
   (ड) आयु० का इ० पृ०, 45

और अरिलोह का अर्थ धातुओं को शत्रु है। जिन द्रव्यों के साथ धातुओं को प्रज्जवलित अग्नि में प्रतप्त करने पर धातुओं की धातुकीय द्युति एवं धातुत्व नष्ट हो जाय, तो उन द्रव्यों को धातुओं का शत्रु कहा जाता है। अर्थात् उन्हें अरिलोह कहा जाता है।[1] धातुद्युति, काठिन्य, लचीलापन, ताप एवं विद्युत् की चालकता आदि धातुकीय गुण कहे जाते है। अरिलोह के सम्पर्क से धातुऐं द्युतिहीन, और भुङ्गुर हो जाती हैं। उसमें ताप एवं विद्युत् की सुचालकता आदि गुण नष्ट हो जाते है। अरिलोहों और क्षारों द्वारा भस्म करने पर अधम अर्थात् दुर्गुणपद भस्में बनती है। इसके सेवन से लाभ की अपेक्षा हानि होती है।

पारदयुक्त धातु भस्मों की महता –

शास्त्रों में कहा गया है कि बिना पारद के धातुओं का मारण नहीं करने चाहिए, सभी धातुएँ पारद संयोग से भस्म करने पर अपने (धातुओं) दोषों को त्याग देती है, पारद भी धातुओं के सम्पर्क में आने पर अपने दोषों को त्याग देता हैं अतः सुवर्णादि सभी धातुओं को पारद संयोग से ही भस्म करें।[2]

धातुओं का उत्तम, मध्यम और अधम भस्म बनाने का विधान संपूर्ण धातुओं का रसभस्म के द्वारा मारण करना उत्तम, काष्ठौषधियों, द्वारा मारण मध्यम और गन्धक आदि से मारण अधम होता है।[3]

---

1. लोहानां मारणं श्रेष्ठं सर्वेषां रसभस्मना।
   मूलीभिर्मध्यमं प्राहुः कनिष्ठं गन्धकादिभिः।।
   अरिलोहेन लोहस्य मारणं दुर्गुणप्रदम्। र० र० स० 5/24
2. (क) लोहं सूतयुतं दोषांस्त्यजेत्सूतस्तु लोहयुक्।
   अतः स्वर्णादिलोहानि बिना सूतं न मारयते।। आयुर्वे० र० शा० पृ० 414
   (ख) न रसेन बिना लोहं न रसंचाभ्रकं बिना।
   एकत्वेन शरीररय बन्धो भवति देहिनः।।
   चपलेन विनः लोहं वः करोति पुमानिह।
   उदरे तस्य किट्टानि जायते नात्र संशयः।। रसे० चि० म० 6/38, 39
3. लोहानां मारणं श्रेष्ठं सर्वेषां रसभस्मना।
   मूलीभिर्मध्यमं प्राहुः कनिष्ठं गन्धकादिभिः।। आयु० प्र० 3/44

धातुओं के भस्मार्थ अग्नि प्रमाण –

आयुर्वेद प्रकाश ग्रन्थ में धातुओं की भस्म मात्रा का वर्णन इस प्रकार से किया है – सर्वप्रथम स्वर्णभस्म की मात्रा जौ से प्रारम्भ करें, फिर ताम्र और चाँदी की भस्म की मात्रा स्वर्ण से द्विगुणी होनी चाहिए और अन्य लोहों की भस्म की मात्रा स्वर्ण से तिगुनी होनी चाहिए। अर्थात् एक रत्ती से प्रारम्भ करके नौ रत्ती तक धातुओं की भस्म की मात्रा होती है। नौ रत्ती की मात्रा दोष और बल के अनुसार देनी चाहिए।[1] सुवर्ण और रजत धातु का मारण करना हो तो पहले 5–6 कुक्कुटपुट ही देना चाहिए। ताम्र का भस्म यदि बनाना हो तो तीव्रग्नि अर्थात् काष्ठ आदि लकड़ियों के टुकड़े को अग्नि से पुट देना चाहिए। यदि लोहा की भस्म करनी हो तो गजपुट में पाक करना चाहिए।[2] इसी तरह अभ्रकभस्म करने के लिए महापुट और नाग वङ्ग का मारण करने के लिए कुवकुटपुट का प्रयोग करना चाहिए।[3]

पुट का लक्षण –

रस उपरस धातु उपधातुओं में से किसको कितनी बार कितनी अग्नि से पकाया गया है इस बात को सूचित करने के लिए जो औषधि को सम्पुट में बन्दकर कम या अधिक उपले, तुष आदि की अग्नि दी जाती है, उसे ''पुट'' कहा जाता है।[4] अर्थात् रसोपरस साधारणरस तथा धातु एवं उपधातुओं और रत्नोपरत्नादि द्रव्यों के पाक की सत्यत्ता का ज्ञान कराने वाले को पुट कहते है।[5] पुट कई प्रकार के होते हैं, जो निम्न प्रकार से वर्णित है –

---

1. आयु० प्र० 3/40–41
2. स्वर्णरूप्यवधे ज्ञेयं पुटं कुक्कुटकादिकम्।
   ताम्रे काष्ठादिजो वह्निलोहे गजपुटानि च।। वही, 3/47
3. चाभ्रे महापुटं दद्यात् नागे वङ्गे हि कौक्कुटम्। आयुर्वे० र० शा० पृ० 416
4. रसोपरसलोहादेः पाकमानप्रमापकम्।
   उत्पलाद्यग्निसंयागात् यत्तदत्र पुटं स्मृतम्। रसतरं० 3/32
5. आयुर्वे० र० शा०, पृ० 131

(क) महापुट – आधा व्याम (दोनों हाथों को सीधा फैलाकर जितनी लम्बाई हो उेस व्याम कहते है) गहरे और दो हाथ चौड़े गोल गढ़े को महापुट कहा जाता है। इस गढ़े के आधे भाग में जंगली उपले भरकर उन पर द्रव्य सम्पुट रख दें और शेष ऊपर के आधे भाग को फिर उपलों से भर दें, फिर इसमें अग्नि देकर पुट दें। इस प्रकार के पुट को महापुट कहते है।[1]

पुटों को जमीन में यदि ईटों से बनाया जाए तो उनके टूटने का डर नहीं रहता है और अग्नि अच्छी तरह लगती है। पुट में आधे उपले भरकर मूषा या सम्पुट रखकर अग्नि देनी चाहिए। फिर और उपले भरने चाहिए। इससे दोनों तरफ अग्नि एक साथ लगती है।

(ख) गजपुट – एक गज या सवा हाथ गहरे और चौड़े गढ़े में आधे भाग तक उपलों से भरकर मूषा रख दें और फिर आधे भाग को उपलों से भरकर अग्नि देने को गजपुट कहा जाता है। यही पुट साधारण रूप से अभ्रक आदि द्रव्यों को पुट देने में काम आता है।[2]

(ग) कुक्कुटपुट – दो बालिस्त गहरे चौड़े गढ़े में उपले भरकर पुट देने को कुक्कुटपुट कहते है।[3]

(घ) कपोतपुट – जमीन के ऊपर आठ जंगली उपलों से रसादिकों की सिद्धि के निमित्त जो पुट दिया जाता है उसे कपोतपुट कहते है।[4]

---

1. व्यामार्द्धनिम्ने चतुस्त्ररूपे हस्तद्वयाययाममिते च कुण्डे।
   वन्योत्पलापूरितगर्भभाणे मूषां निदध्यात्पुटनीयपूर्णाम्।।
   पुनस्तु विन्यस्य वनोत्पलानि सम्पूरयेत्कुण्डमुखं रसज्ञः।
   सन्दीप्य वह्निं पुटनं ततस्तन्महापुटाख्यं विबुधैः प्रदिष्टम्।। रसतरं० 38,39
2. नृपकर चतुरस्त्रोत्सेघदैर्घ्येतु कुण्डे छगणगणभृतार्द्धमूपिकां स्थापयित्वा।
   पुटनमिह भवेद्यच्छाणपूर्णऽर्द्धभागे गजपुटमिहतन्त्रे भाषितं तद्रसज्ञैः।। वही, 3/40
3. वितस्तिद्वयमानेन निम्ने च चतुरस्त्रके।
   पुटं यद्येयते तत्त मतं कुक्कुटकं बुधैः।। वही, 3/42
4. वन्योत्पलैरष्टसंख्यैः ज्ञितौ यद्यीयते पुटम्।
   रसादीनान्तु सिद्धयर्थं तत्कपोतपुटं स्मृतम्।। रसतरं० 3/43

उपल – उपलों को उत्पल, गिरिण्ड, पिष्टक, छण, छेगण तथा करीष नाम से पुकारा जाता है।[1]

धातुओं के भस्मों के रङ्ग[2] – धातुओं के भस्मों के रंग इस प्रकार से है –

1. स्वर्णभस्म – गैरिक या चम्पक, पुष्प के जैसा वर्ण का होता है।

2. रजत और ताम्रभस्म – कृष्ण वर्ण का होता है।

3. कांस्य भस्म – धूसर वर्ण का होता है।

4. नाग भस्म – कबूतर के रङ्ग का होता है।

5. वङ्गभस्म – श्वेत वर्ण का होता है।

6. वीक्ष्णलौह भस्म – जामुन के फल के जैसा (जामुनी रङ्ग का) होता है।

7. अभ्रकभस्म – ईंटे के चूर्ण जैसा लाल रङ्ग का होता है।

यज्ञ के विरिष्ट को जोड़ने के लिए रासायनिक (धातु) प्रक्रिया –

यज्ञ के विरिष्ट अर्थात् क्षत को जोड़ने का रासायनिक (धातु) प्रक्रियाओं से संबंध है जैसे लवण से सोने को जोड़े, सोने से चाँदी को, चाँदी से त्रपु को, त्रपु सीसे को, सीसे से लोहे को, लोहे से लकड़ी को और लकड़ी से चर्म को, वैसे ही इन लोकों, देवताओं और त्रयी विद्या के सामर्थ्य से यज्ञ के विरिष्ट (क्षत) जोड़ दिये जाते है।[3]

---

1. उपलं चोत्पलं ख्यातं गिरिण्डं पिष्टकं तथा।
   छाणञ्च छगणञ्चैव करीषञ्च निगद्यते। रसतरं० 3/50
2. स्वर्ण (गैरिक) चम्पकवर्णाभं कृष्णत्वं तारताम्रयो।
   कांस्यं धूसरवर्णं स्थात्रागः पारावतप्रभः।।
   वङ्ग शुभ्रत्वमायाति तीक्ष्णं जम्बूफलोपमम्।।
   अभ्रकं चेष्टिकाभं स्याद्धातूनां वर्णनिर्णयः।। आयुर्वे० र० शा०, पृ० 416
4. तद्यथा लवणेन सुवर्णं संदध्यात्सुर्वेन रजतम्, रजतेन त्रपु, त्रपुणा सीसम्, सीसेन लोहं, लोहेन दारू, दारू चर्मणा। एवमेषां लोकानामासां देवतानामस्यास्त्रय्या विद्याया वीर्येण यज्ञस्य विरिष्टं संदधाति।। छा० उप० 4/17/8

धातु में द्रव्यता के गुण –

वैशेषिक दर्शन में धातु में द्रव्यता के गुण को इस प्रकार से स्पष्ट किया है पृथिवी में चार गुण रूप, रस, गन्ध और स्पर्श माने हैं, पानी में रूप, रस और स्पर्श इन तीन गुणों के अतिरिक्त द्रवत्व और स्नेह रहते हैं। घी, लाख और मोम में अग्नि के संयोग से द्रवत्व (बहने का गुण) आता है। इनमें द्रवत्व स्वाभाविक गुण नहीं है, केवल नैमित्तिक है पर जल में द्रवत्व सामान्य गुण है। इसी प्रकार राँगा, सीसा, लोहा, चाँदी और सोने में अग्नि के संयोग से द्रवत्व आता है, यह द्रवत्व नैमित्तिक है, पर जल में स्वाभाविक द्रवत्व है।[1] तेज के कारण पृथिवी में त्रपु, सीस, घृत आदि में द्रवत्व आ जाता है।[2]

धातु की मूल्यता –

शुक्रनीतिसार में धातु की मूल्यता का उल्लेख इस प्रकार किया है– तौल में बराबर होने के बावजूद सुवर्ण अन्य धातुओं की अपेक्षा पतला होता है और अन्य धातुएँ तौल में बराबर होने पर भी सुवर्ण से मोटी होती है।[3] सुवर्ण की मूल्यता चाँदी से सोलह गुण अधिक होती है, चाँदी की मूल्यता ताँबे से अस्सी गुणा अधिक होती है। ताँबे की मूल्यता राँगे से डेढ़ गुणा अधिक होती है वंग से राँगा तथा सीसा क्रमशः ताँबे से दुगना एवं तिगुना अधिक मिलते है और लोहा छः गुणा अधिक मिलता है।[4]

---

1. रूपरसगन्धस्पर्शवती पृथिवी। रूपरसस्पर्शवत्य आपो द्रवाः स्निग्धाः।
   सर्पिर्जतुमधूच्छिष्टानामग्निसंयोगाद् द्रवत्वमद्भिः सामान्यम्। त्रपुसीसलोहरजत
   सुवर्णानामग्निसंयोगाद् द्रवत्त्वमद्भिः सामान्यम्। वैशे० द० 2/1/17
2. आकरजं सुवर्णादि। प्रा० भा० मे र० क० वि० पृ० 694
3. मानसममपि स्वर्णं तनु स्यात पृथुलाः परे। शु० नी० 4/90
4. रजतं षोडश गुणं भवेत् स्वर्णस्य मूल्यकम्।
   ताम्रं रजतमूल्यं स्यात् प्रायोऽशीतिगुणं तथा।
   ताम्राधिक सार्द्धगुणं वङ्ग वङ्गात तथा परे।।
   रङ्गसीसे द्वित्रिगुणे ताम्राल्लोहन्तु षडगुणम्।
   मूल्यमेतद्विशिष्टन्तु ह्युक्तं प्राङ्मूल्यकल्पनम्।। वही, 4/92, 93, 94

सोना चाँदी एवं कठोर धातु का मृदुकरण –

सोना, चाँदी एवं कठोर धातु के मृदूकरण का उल्लेख 'रसरत्नाकर' ग्रन्थ में इस प्रकार से किया है –

(क) आक, अपामार्ग और केला इनकी भस्म को जल में घोलकर कपड़ से छानकर किसी पात्र में लेपकर धूप में सुखाने से जो नमक निकले उसके एक भाग को पिघले सोना अथवा चाँदी के सौ भाग में रखकर तिल के तेल में तीन बार बुझाने से वह सोना और चाँदी अत्यन्त कोमल हो जाते है।[1]

(ख) घोड़ा, गाय और भैंस का खुर तथा सींग का चूर्ण पिघले हुए सोना–चाँदी में डालने से वे कोमल हो जाते हैं।[2]

(ग) हाथी दांत का चूर्ण अथवा मनुष्य के सूखे हुए मल को पिघले हुए सोना–चाँदी में डालने से कोमल हो जाते है।[3]

(घ) अच्छी तरह तपाए हुए किसी भी धातु को वसुहट्ट के रस के तीन बार सिंचन करने पर नमक के समान स्फुटित धातु भी मृदु होती है, जैसे कि रेत हो।[4]

(ङ) मधूकपुष्पी, यष्टीक (मुलैठी) केले का कन्द, घी, गुड़, तिल का तेल, बकरी का दूध और शहद इन सबको समान–समान मात्रा में मर्दन करके अच्छी तरह तपाए हुए कठोर धातु को उसमें तीन बार सिंचन (बुझाना) करें। इससे निस्सन्देह वह मृदुता को प्राप्त करके सूत्र बनाने योग्य हो जाती है।[5]

---

1. र० रत्० 8/135, 136, 137
2. अश्वगोमहिषीणां च खुरं शृंगं समाहरेत्।
   तच्चूर्णावापमात्रेण अत्यन्तं मृदुता व्रजेत्।। शु० नी० 8/138
3. गजदन्तस्य चूर्ण वा शुष्कं वाथ नृणां मलम्।
   कठिने दापयेद्वापं भवेन्मृदुतरं महत्।। वही, 8/139
4. वसुभट्टरसेनाथ त्रिधा सिंचेत्सुतापितम्।
   लोणवत्स्फुटितो धातुर्मृदुस्यात्सिक्थको यथा।। वही, 20/92
5. मधूकपुष्पी यष्टीकं रम्भाकन्दं घृतं गुडम्।
   तिलतैलमजाक्षीरं क्षौद्र च तुल्यतुल्यकम्।।
   तन्मध्ये कठिनं धातु त्रिधा सिंचयात्सुतापितम्।
   मृदुत्वं याति नो चित्रं सूत्रयोग्यं न संशयः।। र० रत्० 20/110, 111

(च) बहुत मोटे मेंढ़क की आंतों को निकालकर उसके पेट में सुहाणा चूर्ण डालकर उसे मात्र में रखकर उस मात्र को भूमि खोदकर दबा दें। 21 दिन बाद निकालकर उसका वापन करने से सोना चाँदी आदि धातुएँ मृदुता को प्राप्त करके पत्र बनाने के योग्य मृदु हो जाती है।[1]

सर्वधातुद्रुति –

रस रत्नाकर ग्रन्थ में सर्वधातुद्रुति का इस प्रकार से वर्णन किया है –

(क) समान भाग गंधक और कान्तपाषाण के चूर्ण को पिघले लोहों में मिलाने से आठो लोहों (धातुओं) की स्थायी द्रुति हो जाती है।[2]

(ख) समान भाग गंधक चूर्ण को देवदाली के स्वरस में सात दिन तक भावनाएँ देने के पश्चात् पिघले लोहों (धातुओं) में डालने से वह धातुएँ पारद के समान पिघली हुई रहती है।[3]

(ग) अपनी इच्छानुसार किसी भी एक लोहे के चूर्ण को कटहल के फल के स्वरस के साथ सात दिन भावना देकर अम्लवर्ग के साथ मर्दन करके पिघलाने से लिखने योग्य लोहे (धातुओं) का रस होगा, इसमें तनिक सन्देह नहीं है।[4]

(घ) गंधक और लाल नमक के चूर्ण को पिघले हुए लौह चूर्ण में बार–बार डालने से सभी लोहों (धातुओं) का स्थायी रस होगा।[5] पीले मेंढक के पेट में

---

1. अतिस्थूलस्यं भकेस्य निवार्यान्त्राणि तत्र वै।
   चूर्णितंटंकणं क्षिप्त्वा तद्भाण्डस्य खनेद् भुवि।।
   त्रिसप्ताहं समुद्धृत्य तद्वापे मृदुतां व्रजेत्।
   स्वर्णं वा यदि वा रौप्यंमृदुस्यात्पत्रयोण्कम्। र० रत्० 20/113, 114
2. गन्धकं कान्तपाषाणं चूर्णयित्वा समंसमम्।
   द्रुते लोहे प्रतीवापो देयो लोहाष्टकं द्रवेत्।। वही, 17/45
3. देवदाल्या द्रवैर्भाव्यं गन्धकं दिनसप्तकम्।
   तेन प्रवापमात्रेण लोहं तिष्ठति सूतवत्। वही, 17/46
4. लोहचूर्णं यथेब्टैकं पनसस्य फलद्रवैः।
   सप्ताहं भावयेद् धर्मै अम्लवर्गेण मर्दयेत्।
   द्रवते धमनेनैव लिपियोग्यं न संशयः।। वही, 17/56
5. गन्धकं रक्तलवणं तुल्यं देयं पुनः पुनः।
   द्रुतानां तप्तचूर्णानां सर्वेषां द्रावणं परम्।। वही, 17/57

सुहागा डालकर मिट्टी के पात्र में बन्द करके 21 दिन तक जमीन के अन्दर गाड़ कर छोड़ देने के पश्चात् निकाल कर इस चूर्ण को पिघले हुए लोहों में डालने से सभी लोहों का पारद के समान स्थायी रस होता है।[1]

I.ii.4 वैदिक साहित्य में धातु –

वैदिक साहित्य में धातु का प्रयोग किसी न किसी रूप से हुआ है। धातु शब्द जहाँ कही भी आया है, वह 'धातृ' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।[2] ऋग्वेद के 'हिरण्यगर्भ' सूक्त में परमात्मा को स्वर्णमयी पदार्थों से युक्त 'हिरण्यगर्भ कहा है। संस्कृत व्याकरण में ''हिरण्यगर्भ'' शब्द बहुव्रीहि समास का समस्त पद है। हिरण्यम् गर्भे यस्य स हिरण्यगर्भः अर्थात् हिरण्यादि ऐश्वर्य युक्त चमकीले रत्नादि धातु जिसके गर्भ में हो, उसे हिरण्यगर्भ कहा है। आकाश उस विराट् परमात्मा का गर्भ है। उसके उस विशाल गर्भ में खन्जि हिरण्य–स्वर्णादि रत्नभण्डारयुक्त पृथिवी मण्डल विद्यमान है।[3] ऋग्वेद में अनेक स्थलों पर अयस् शब्द का प्रयोग हुआ है। अश्वनी कुमारों ने विश्पला की टाँग कट जाने पर लौहमयी जंघा बनाकर धारण कराया था।[4]

यजुर्वेद के एक स्थल पर धातुओं और खनिज पदार्थों का वर्णन इस प्रकार से हुआ है – 'अश्म (पत्थर) मृत्तिका (मिट्टी) और ऐकता (बालू) के अतिरिक्त हिरण्य (सोना), अयस (लोहा अथवा कांसा) श्याम (ताँबा), लोह

---

1. पीतमण्डूकगर्भे तु चूर्णितं टंकणं क्षिपेत्।।
   रूद्ध्वा भाण्डे क्षिपेद् भूमौ त्रिसप्ताहात्समुद्धरेत्।।
   तत्समस्तं विचूर्ण्याथ द्रुते लोहे प्रवापयेत्।
   तिष्ठन्ति रसरूपाणि सर्वलोहानि नान्यथा।। र० रत्० 17/58, 59
2. ऋ० वे० 1/190/8, 5/44/3, 6/47/11
3. हिरण्यगर्भ समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
   स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विद्येम। वही, 10/121/1
4. (क) भी अयसो न धाराम्। वही, 6/3/5
   (ख) अयोमुखम्। वही, 6/75/15
   (ग) सद्यां जंघामायसीं सर्तये प्रत्यधत्ताम् वही, 1/56/3

(लोहा), सीस (सीसा) और त्रपु (रांगा, वेण या दिन) का उल्लेख है।[1] यजुर्वेद के एक मंत्र में अयस्ताप का उल्लेख इस प्रकार से हुआ है जो लोहे के खनिज को लकड़ी कोयला आदि के साथ तपाकर धातु तैयार करता है।[2]

अथर्ववेद में हरित, रजत ओर अयस् तीन शब्द प्रयुक्त हुए हैं जो क्रमशः सोना (हिरण्य), चाँदी और लोहे के पर्याय है। सफेद सुन्दर रूप के कारण चाँदी को अर्जुन भी कहा गया है।[3] श्याम (ताँबे) लोहित (लोहे) और हरित (सोने) के साथ त्रपु (राँगा) शब्द का भी प्रयोग हुआ है। अथर्ववेद में धातु के विषय में इस प्रकार का वर्णन हुआ है कि इसका मांसा ताम्रवर्ण (श्याम) का है, रूधिर लोहवर्ण का, इसकी भस्म त्रपु वर्ण की है और इसका रंग हरित या सुवर्ण का सा है।[4] अथर्ववेद का एक सम्पूर्ण सूक्त सीसम् पर है (दधत्यं सीसम्) जिसमें यह बताया गया है वरूण, अग्नि और इन्द्र इन तीनों की कृपा से सीसा धातु प्राप्त हुई। यह शत्रु को दूर भगाने वाली हैं।[5] शतपथ ब्राह्मण में ताँबा, लोहा, चाँदी, सीसा और सोना इन पांच धातुओं का उल्लेख हुआ है। ताँबे के लिए ''लोह'' शब्द का प्रयोग हुआ है, क्योंकि ताँबा लाल रंग का होता है।[6] चाँदी के लिए रजत हिरण्य (अर्थात् सफेद सोना) शब्द का प्रयोग हुआ है।[7] सुवर्ण को अमृत आयु बताया गया हैं अमृत के साथ–साथ ज्योति भी कहा

---

1. अश्मा च मे मृत्तिका च मे गिरयश्च में पर्वताश्च मे सिकताश्च में वनस्पतयश्च में हिरण्यं च में ऽयश्च में श्यामं च मे लोहं च में सीसं च में त्रपु च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ।
   यजु० वे० 18/13
2. मन्यवे अयस्ताम्। वही, 30/14
3. (क) हरिते त्रीणि रजते त्रीष्यसि त्रीणि तपसाविष्ठितानि। अर्थ० वे० 5/28/1
   (ख) भूमिष्ट्वा पातु हरितेन विश्वभृदग्निः पिपर्त्वयसा सजोषाः।
   वीरूद्भिष्टे अर्जुनं संविदानं दक्षं दधातु सुमनस्यमानम्।। वही, 5/28/5
4. श्याममयोऽस्य मांसानि लोहितामस्य लोहितम्।
   त्रपु भस्म हरितं वर्णः पुष्करमस्य गन्धः।। वही, 11/3/7–8
5. सीसायाध्याह वरूणः सीसायाग्निरूपावति।
   तं त्वा सीसेन विध्यामो यथा नोऽसो अवीरहा।। वही, 1/16/2–4
6. तत् त्र्येनी शलली भवति लोहः क्षुरः। श० प० ब्रा० 2/6/4/5
7. तत्रेत्थङ्कुर्याद् रजतं हिरण्यं दर्भे प्रबद्ध्य। वही, 12/4/4/7

कहा है। हिरण्य अमृत है, इसलिए इसके द्वारा मार्जन किया जाता है।[1] सीसा को सोने और लोहे का ही रूप बताया गया है और सीसा देकर सोत्रामणि यज्ञ में शब्द (अंकुर निकले धान) खरीदने का विधान है।[2] इस प्रकार से धातुओं का उल्लेख वैदिक साहित्य में हुआ है।

I.iii वर्तमानकाल में धातु –

I.iii.1 वर्तमानकालीन धातुओं के नाम एवं स्वरूप –

धातुमय खनिज – पृथ्वी के गर्भ में पाई जाने वाली धातुओं के रासायनिक मिश्रण को खनिज कहते है। खदानों में से जब खनिज निकाला जाता है तब उसके साथ अनेक विजातीय द्रव्यों जैसे बालू, स्फटिक या बिल्लोरी पत्थर (Quartz) मिट्टी, शिष्टशिला, शेल इत्यादि का सम्मिश्रण रहता है। इन विजातीय द्रव्यों को 'गैंग' (Gangue) कहा जाता है। जब खनिज पदार्थ में धातु की मात्रा इस अनुपात में हो कि धातु का उत्पादन आर्थिक दृष्टि से लाभप्रद हो तो उसे ''ओर'' (Ore) कहते हैं। कोई खनिज 'ओर' कहलाने योग्य है या नहीं इसके लिए तीन बातों पर विचार करना मुख्य हैं।

1. खनिज में धातु की प्रतिशत मात्रा।
2. धातु के उत्पादन का खर्च और
3. धातु की विक्रय दर

इन सब बातों का विचार करते हुए कोई खनिज एक समय 'ओर' कहलाने योग्य न होते हुए भी दूसरे लाभप्रद अवसर पर 'ओर' बन जाता है या आर्थिक दृष्टिकोण से उससे शोधन द्वारा धातु प्राप्त की जा सकती है।

---

1. (क) अमृतमायुर्हिरण्यम्। श० प० ब्रा० 5/3/5/15
   (ख) ज्योतिर्वैहिरण्यं.....अमृतं हिरण्यम्। वही, 6/7/1/2
   (ग) हिरण्येन मार्जयन्तेऽमृतं वै हिरण्यम्। वही, 12/8/1/22
2. सीसेन शब्पाणि क्रीणाति एतद्रूपमयसश्च हिरण्यस्य च यत्सीसमुभयं सौत्रामणीष्टिश्च। वही, 12/7/2/10

प्रधान धातुमय खनिजों में धातु का प्रतिशत अंश इस प्रकार से है[1] –

धातुमय खनिज	धातु का औसत प्रतिशत
सोना	$0^{0}001$
चाँदी	$0^{0}02$
राँगा	1.5
ताँबा	$2^{0}0$
सीसा	25%
जस्ता	15%
अलुमीनियम	$30^{0}0$
लोहा	$50^{0}0$

धातुओं के भारीपन और उनके द्रवणाङ्क का ज्ञान –

आयुर्वेदप्रकाश ग्रन्थ में धातुओं के भारीपन और उनके द्रवणाङ्क का ज्ञान का वर्णन इस प्रकार से हुआ है – किसी पदार्थ का भारीपन जब उतने ही आयतन (आकार) के पानी की अपेक्षा बतलाया जाता है तब उस भारीपन को आपेक्षिक गुरूत्व (विशिष्ट गुरूव) कहते हैं।

द्रवणाङ्क का तात्पर्य है ताप के क्रम का वह अङ्क अथवा संख्या, जिस पर वह पदार्थ पिघल जाता है द्रवणाङ्क प्रायः शतांश–पद्धति से ही प्रकट किया जाता है, जिसमें पिघलते हुए बर्फ के तापक्रम शून्य को और उबलते हुए शुद्ध जल के ताप क्रम को 100 तक माना गया है।

---

1. धा० वि० – 1/ पृ० 18

धातुओं के विशिष्ट गुरूत्व और द्रवणाङ्क इस प्रकार से है[1] :–

धातु का नाम	विशिष्ट गुरूत्व	द्रवणाङ्क
सुवर्ण	19 – 4	1064
चाँदी	10 – 5	960
ताम्र	9 – 0	1057
लोहा	7 – 7	1520
सीसा	11 – 4	325
वंग (रांगा)	7 – 28	233
यशद	7 – 1	410
अलुमिनम	2 – 6	655

वर्तमानकालीन धातुओं के नाम –

प्राचीन समय से ही धातुओं का उल्लेख विज्ञान में हुआ है। 6000 ई० पूर्व सात धातुओं का वर्णन हुआ था, किन्तु समय के साथ–साथ अनेक धातुओं का वर्णन प्राप्त हुआ। 18वीं शताब्दी पूर्व से लेकर 20वीं शताब्दी तक की धातुओं का वर्णन इस प्रकार से है।[2]

18वीं शताब्दी पूर्व धातुएँ

1. Gold – 6000 BC
2. Silver – 4000 BC
3. Copper – 4200 BC
4. Lead – 3500 BC
5. Mercury – 750 BC
6. Iron – 1500 BC
7. Tin – 1750 BC
8. Platinum – 1500's

1. आयु० प्र० 3/पृ० 343
2. A History of Metals Vol-II[nd] – Alan W. Cramb

9. Antimony – 1560's
10. Bismuth – 1595's
11. Zinc – 1400's
12. Arsenic – 1300's

18वीं शताब्दी में उपलब्ध धातुएँ

13. Cobatt – 1735
14. Nickel – 1751
15. Maganese – 1774
16. Molybdenum – 1781
17. Tellurium – 1782
18. Tungsten – 1783
19. Uranium – 1789
20. Zirconium – 1791
21. Titanium – 1791
22. Yttrium – 1794
23. Berylium – 1797
24. Chromium – 1797

19वीं शताब्दी में उपलब्ध धातुएँ

25. Niobium – 1801
26. Tantalum – 1802
27. Tridium – 1803
28. Palladium – 1803
29. Rhodium – 1803
30. Potassium – 1807
31. Sodium – 1807
32. Boron – 1808
33. Barium – 1808
34. Calcium – 1808
35. Magnesium – 1808
36. Stroutium – 1808
37. Cerium – 1814
38. Lithium – 1817
39. Codmium – 1817
40. Selenium – 1817
41. Silicon – 1823
42. Aluminum – 1827
43. Thorium – 1828
44. Vanadium – 1830
45. Lanthanum – 1839
46. Erbium – 1843

47. Terbium – 1843
48. Ruthenium – 1844
49. Cesium – 1860
50. Rubidium – 1860
51. Thallium – 1861
52. Tndium – 1863
53. Gallium – 1875
54. Holmium – 1858
55. Thulium – 1879
56. Scandium – 1880
57. Samarium – 1881
58. Gadalinium – 1882
59. Praseodynium – 1883
60. Neodynium – 1884
61. Dysprosium – 1885
62. Germanium – 1886
63. Polonium – 1898
64. Radium – 1898
65. Actinum – 1899

20वीं शताब्दी में उपलब्ध धातुएँ

66. Europium – 1901
67. Lutetium – 1907
68. Protactinium – 1917
69. Hafnium – 1923
70. Rhenium – 1924
71. Technetium – 1937
72. Francium – 1939
73. Promethium – 1945
74. Transuranium – 1940-61
75. Neptunium
76. Plutonium
77. Curium
78. Americum
79. Berkelium
80. Californium
81. Einstoinium
82. Fermium
83. Mendelevium
84. Nobelium
85. Lawrencium